सूरदास
एक मूल्यांकन

(Surdas : An Evaluation)

कंचन शर्मा

सूरदास : एक मूल्यांकन

सूरदास : एक मूल्यांकन
(Surdas : An Evaluation)

कंचन शर्मा

भाषा प्रकाशन
नई दिल्ली - 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-5472-7

प्रथम संस्करण : 2021

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

प्रस्तावना

सूरदास का संपूर्ण जीवन भगवान श्रीकृष्ण के प्रति समर्पित था। दूसरे शब्दों में, यदि हम उन्हें पूर्णतया कृष्णमय कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। सूरदास द्वारा रचित काव्य 'सूरसागर' और सूर-सारावली, साहित्य लहरी, के अतिरिक्त दृष्टिकूट, सेवाफल, नल-दमयंती आदि भी उनकी उत्कृष्ट रचनाएँ हैं।

वास्तविक रूप में कविवर सूरदास काव्य जगत के शिरोमणि कवि थे, जिनकी काव्य प्रतिभा का आलोक आज भी प्रकाशमान है। आज भी उनकी रचानाएँ जनमानस को मंत्रमुग्ध करती हैं तथा हजारों लाखों को ईश्वर के प्रति भक्ति भाव से जोड़ती हैं। इस प्रकार सूरदास हिंदी साहित्य के ऐसे अनमोल रत्न हैं, जिनकी महत्ता को हिंदी साहित्य के किसी भी कालखंड में घटाया नहीं जा सकता। सूरदास कवियों में सर्वोपरि है।

सूरदास के काव्य में वात्सल्य, करुण, शांति एवं श्रृंगार आदि रसों का प्रयोग बहुलता से देखने को मिलता है। उनके काव्यों में विभिन्न अलंकारों—अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा व यमक आदि का सम्मिश्रण काव्य को और भी अधिक उत्कृष्ट बनाता है।

मानव जीवन के विभिन्न अनुभूतिपूर्ण रंगों का प्रयोग जिस अनूठे एवं प्रभावशाली ढंग से सूरदास जी ने किया है वह विरला ही कोई कर सकता है। सूरदास जी के समस्त पद गेय हैं एवं साथ ही साथ संगीतात्मक भी जो उनकी संगीत शास्त्र के प्रति बोध की पुष्टि करते हैं। आज भी सूरदास के पद हमारे

भजनों व शास्त्रीय गायकी में विशेष रूप से प्रचलित हैं, जो श्रोताओं को भावविभोर कर देते हैं।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है; मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ। आशा करता हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी होगी।

—लेखक

अनुक्रम

प्रस्तावना *v*
1. **सूरदास** **1**
काल–निर्णय 4
जाति 5
विवेकशील और चिन्तनशील व्यक्तित्त्व 8
सूरदास की अन्धता 9
'सूरसागर' के रचयिता 10
सूरसागरः संदिग्ध प्रामाणिकता 11
विशाल काव्य सर्जन 12
महाकवि सूरदास का स्थान 12
2. **सूरदास की रचनाएँ** **18**
सूरसागर 27
3. **सूरदास का काव्य** **30**
काव्य पक्ष 30
भावपक्ष 30
प्रकृति–चित्रण 32
दृष्टिकूटि–शैली 33
भाषा–शैली 34

	काव्य-रस एवं समीक्षा	34
4.	**भ्रमर गीत**	**43**
	विनय के पद	49
	भ्रमरगीत	59
5.	**महाकवि सूरदास का सौन्दर्य-बोध**	**64**
	महाकवि सूरदास के सौंदर्य बोध के विविध आयाम	66
	दिव्य सौंदर्य	67
	मानवीय सौंदर्य	68
	नारी-सौंदर्य	68
	प्रकृति सौंदर्य	69
	कलागत सौन्दर्य	69
	भाव-सौंदर्य	70
	शिल्प सौन्दर्य	71
	भाषा	72
	मुहावरे-लोकोक्ति सौष्ठव	73
	काव्य-गुण सौष्ठव	74
6.	**भक्ति काल**	**76**
	सगुण भक्ति	77
	निर्गुण भक्ति	77
	संत कवि	77
	कृष्णाश्रयी शाखा	82
	रामाश्रयी शाखा	82
	ज्ञानाश्रयी मार्गी	85
	प्रेमाश्रयी शाखा	86
	राम और कृष्ण की उपासना	87
	राधा-कृष्ण की लीलाएँ	87
	भक्ति भावना	90
	प्रमुख कवि	92
7.	**सूरदास जी का वात्सल्य भाव**	**93**

1

सूरदास

भक्ति काव्य की सगुण धारा की कृष्ण भक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि सूरदास का जन्म सन् 1478 ई. (संवत- विक्रम 1535) में आगरा से मथुरा जाने वाले मार्ग पर स्थित रुनकता नामक ग्राम में हुआ था। कुछ विद्वान दिल्ली के निकट स्थित 'सीही' नामक ग्राम को इनका जन्म स्थान मानते हैं। इनके पिता का नाम पं. रामदास सारस्वत था। लोगों का मानना है कि सूरदास जन्म से ही अन्धे थे। परन्तु इस विषय में विद्वानों में मतभेद हैं, क्योंकि सूरदास ने वात्सल्य और श्रृंगार का जैसा अनुपम वर्णन किया है वैसा, आँखों से प्रत्यक्ष देखे बिना सम्भव नहीं है अर्थात् जन्मान्ध कवि नहीं कर सकता। इन्होंने स्वयं अपने आप को जन्मान्ध कहा है। ऐसा इन्होंने आत्मग्लानिवश या ज्ञान चक्षुओं के अभाव में भी कहा हो सकता है।

सूरदास की रुचि बचपन से ही भगवद्भक्ति के गायन में थी और गऊघाट में रहकर विनय के पद गाया करते थे। यहाँ पर महाप्रभु बल्लभाचार्य से इनकी भेंट हुई। भेंट के समय सूरदास ने उन्हें स्वरचित एक पद गाकर सुनाया, जिसे सुनकर बल्लभाचार्य की खुशी का ठिकाना न रहा और उन्होंने सूरदास को अपना शिष्य बना लिया।

बल्लभाचार्य से गुरु दीक्षा ली। फिर गुरु जी ने इनको गोवर्धन के श्रीनाथ जी के मन्दिर में कीर्तन का भार सौंप दिया। बल्लभाचार्य के पुत्र बिट्ठलनाथ ने आठ कृष्ण भक्ति कवियों का संगठन बनाया जिसे 'अष्टछाप' कहा जाता है।

सूरदास 'अष्टछाप' के सर्वश्रेष्ठ कवि थे। वे गऊघाट में रहकर जीवनभर कृष्ण लीलाओं का गान करते रहे। उनके द्वारा कृष्ण भक्ति में रमे नित नए पदों की रचना होने लगी। कहते हैं कि 105 वर्ष के अपने दीर्घ जीवनकाल में उन्होंने एक लाख से भी अधिक पदों की रचना की। हालाँकि इसमें से कुछ पद ही आज पाठकों के लिए उपलब्ध हैं। आप के द्वारा रचित काव्यग्रंथ 'सूरसागर', 'सूर सारावली' एवं 'साहित्य लहरी' हिंदी साहित्य जगत की अति विशिष्ट काव्य कृतियाँ हैं।

'सूरसागर' एक अत्यंत अनूठा एवं अद्वितीय काव्यग्रंथ है। भगवान कृष्ण की बाल्यकालीन लीला का जो मनोहारी एवं अनूठा चित्रण सूरदास जी ने किया है वह अतुलनीय है। उनकी दस अद्वितीय काव्य रचनाओं में श्री कृष्ण के बाल जीवन तथा गोपिकाओं के साथ हास-परिहास एवं अनेक प्रकार के असुरों के हनन आदि का वर्णन मिलता है।

उनकी बाल-लीलाओं का चित्रण इतने सुन्दर ढंग से हुआ है कि समस्त दृश्य जैसे सजीव हो उठते हैं। माता यशोदा के द्वारा बालक श्रीकृष्ण जब मक्खन (नवनीत) चुराते समय पकड़े जाते हैं तब वह किस प्रकार माता को समझाते हैं वह निम्नलिखित पंक्तियों में वर्णित है–

"मैया मोरी, मैं नहिं माखन खायो।
ग्वाल बाल सब बैर परत हैं, बरबस मुख लपटायो।
री मैया मोरी मैं नहिं माखन खायो।"

इसी प्रकार बालक श्रीकृष्ण के इस दृश्य का भी मनोहारी चित्रण है, जिसमें वह मक्खन हाथ में लिए हुए घुटनों के बल चलते हैं–

"सोभित कर नवनीत लिए। घटरुनि चलत रेनु तन मंडित दधि मुख लेप किये।"

इसी प्रकार उनके बाल्य जीवन संबंधी ऐसे अनेकों प्रसंगों का वर्णन सूरसागर से प्राप्त होता है, जो मन को छू जाता है ओर पाठक को भाव-विभोर कर देता है। श्रीकृष्ण एवं राधिका के पावन प्रेम को भी सूरदास जी ने बड़े ही प्रभावशाली ढंग से चित्रित किया है। श्रृंगार का जो अद्भुत चित्रण सूरदास जी ने अपनी रचनाओं में किया है वह अद्वितीय है।

सूरदास के काव्य में वात्सल्य, करुण, शांति एवं श्रृंगार आदि रसों का प्रयोग बहुलता से देखने को मिलता है। उनके काव्यों में विभिन्न अलंकारों–अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा व यमक आदि का सम्मिश्रण काव्य को और भी अधिक उत्कृष्ट बनाता है।

मानव जीवन के विभिन्न अनुभूतिपूर्ण रंगों का प्रयोग जिस अनूठे एवं प्रभावशाली ढंग से सूरदास जी ने किया है वह विरला ही कोई कर सकता है। सूरदास जी के समस्त पद गेय हैं एवं साथ ही साथ संगीतात्मक भी जो उनकी संगीत शास्त्र के प्रति बोध की पुष्टि करते हैं। आज भी सूरदास के पद हमारे भजनों व शास्त्रीय गायकी में विशेष रूप से प्रचलित हैं, जो श्रोताओं को भावविभोर कर देते हैं।

सूरदास का संपूर्ण जीवन भगवान श्रीकृष्ण के प्रति समर्पित था। दूसरे शब्दों में, यदि हम उन्हें पूर्णतया कृष्णमय कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। सूरदास द्वारा रचित काव्य 'सूरसागर' और सूर-सारावली, साहित्य लहरी, के अतिरिक्त दृष्टिकूट, सेवाफल, नल-दमयंती आदि भी उनकी उत्कृष्ट रचनाएँ हैं।

वास्तविक रूप में कविवर सूरदास काव्य जगत के शिरोमणि कवि थे, जिनकी काव्य प्रतिभा का आलोक आज भी प्रकाशमान है। आज भी उनकी रचानाएँ जनमानस को मंत्रमुग्ध करती हैं तथा हजारों लाखों को ईश्वर के प्रति भक्ति भाव से जोड़ती हैं। इस प्रकार सूरदास हिंदी साहित्य के ऐसे अनमोल रत्न हैं, जिनकी महत्ता को हिंदी साहित्य के किसी भी कालखंड में घटाया नहीं जा सकता। सूरदास कवियों में सर्वोपरि है।

सूरदास का जन्म कब हुआ, इस विषय में पहले उनकी तथाकथित रचनाओं, 'साहित्य लहरी' और सूरसागर सारावली के आधार पर अनुमान लगाया गया था और अनेक वर्षों तक यह दोहराया जाता रहा कि उनका जन्म संवत 1540 विक्रमी (सन 1483 ई.) में हुआ था परन्तु विद्वानों ने इस अनुमान के आधार को पूर्ण रूप में अप्रमाणिक सिद्ध कर दिया तथा पुष्टि-मार्ग में प्रचलित इस अनुश्रुति के आधार पर कि सूरदास श्री मद्वल्लभाचार्य से 10 दिन छोटे थे, यह निश्चित किया कि सूरदास का जन्म वैशाख शुक्ल पक्ष पंचमी, संवत 1535 वि. (सन 1478 ई.) को हुआ था। इस साम्प्रदायिक जनुश्रुति को प्रकाश में लाने तथा उसे अन्य प्रमाणों में पुष्ट करने का श्रेय **डा. दीनदयाल** गुप्त को है। जब तक इस विषय में कोई अन्यथा प्रमाण न मिले, हम सूरदास की जन्म-तिथि को यही मान सकते हैं। सूरदास के विषय में आज जो भी ज्ञात है, उसका आधार मुख्यतया 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' ही है। उसके अतिरिक्त पुष्टिमार्ग में प्रचलित अनुश्रुतियाँ जो गोस्वामी हरिराय द्वारा किये गये उपर्युक्त वार्ता के परिवर्द्धनों तथा उस पर लिखी गयी 'भावप्रकाश' नाम की टीका और गोस्वामी यदुनाथ द्वारा लिखित 'वल्लभ दिग्विजय' के रूप में प्राप्त होती है, सूरदास के

जीवनवृत्त की कुछ घटनाओं की सूचना देती है। नाभादास के 'भक्तमाल' पर लिखित प्रियादास की टीका, कवि मियासिंह के 'भक्त विनोद', ध्रुवदास की 'भक्तनामावली' तथा नागरीदास की 'पदप्रसंगमाला' में भी सूरदास सम्बन्धी अनेक रोचक अनुश्रुतियाँ प्राप्त होती हैं, परन्तु विद्वानों ने उन्हें विश्वसनीय नहीं माना है। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' से ज्ञात होता है कि प्रसिद्ध मुगल सम्राट् अकबर ने सूरदास से भेंट की थी परन्तु यह आश्चर्य की बात है कि उस समय के किसी फारसी इतिहासकार ने 'सूरसागर' के रचयिता महान भक्त कवि सूरदास का कोई उल्लेख नहीं किया। इसी युग के अन्य महान भक्त कवि तुलसीदास का भी मुगलकालीन इतिहासकारों ने उल्लेख नहीं किया। अकबरकालीन प्रसिद्ध इतिहासग्रन्थों-'आईने अकबरी', 'मुशि आते-अबुलफजल' और 'मुन्तखबुत्तवारीख' में सूरदास नाम के दो व्यक्तियों का उल्लेख हुआ है, परन्तु ये दोनों प्रसिद्ध भक्त कवि सूरदास से भिन्न हैं। 'आईने अकबरी' और 'मुन्तखबुत्तवारीख' में अकबरी दरबार के रामदास नामक गवैया के पुत्र सूरदास का उल्लेख है। ये सूरदास अपने पिता के साथ अकबर के दरबार में जाया करते थे। 'मुंशिआते-अबुलफजल' में जिन सूरदास का उल्लेख है, वे काशी में रहते थे, अबुलफजल ने उनेक नाम एक पत्र लिखकर उन्हें आश्वासन दिया था कि काशी के उस करोड़ी के स्थान पर जो उन्हें क्लेश देता है, नया करोड़ी उन्हीं की आज्ञा से नियुक्त किया जायगा। कदाचित ये सूरदास मदनमोहन नाम के एक अन्य भक्त थे।

काल-निर्णय

सूरदास की जन्म-तिथि तथा उनके जीवन की कुछ अन्य मुख्य घटनाओं के काल-निर्णय का भी प्रयत्न किया गया है। इस आधार पर कि गऊघाट पर भेंट होने के समय वल्लभाचार्य गद्दी पर विराजमान थे, यह अनुमान किया गया है कि उनका विवाह हो चुका था क्योंकि ब्रह्मचारी का गद्दी पर बैठना वर्जित है। वल्लभाचार्य का विवाह संवत 1560-61 (सन 1503-1504 ई.) में हुआ था, अतः यह घटना इसके बाद की है।

'वल्लभ दिग्विजय' के अनुसार यह घटना संवत 1567 विक्रमी के (सन 1510 ई.) आसपास की है। इस प्रकार सूरदास 30-32 वर्ष की अवस्था में पुष्टिमार्ग में दीक्षित हुए होंगे। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' से सूचित होता है कि सूरदास को गोसाई विट्ठलनाथ का यथेष्ट सत्संग प्राप्त हुआ था। गोसाई जी संवत

1628 विक्रमी (सन 1571 ई.) में स्थायी रूप से गोकुल में रहने लगे थे। उनका देहावसान संवत 1642 विक्रमी (सन 1585 ई.) में हुआ। 'वार्ता' से सूचित होता है कि सूरदास को देहावसान गोसाई जी के सामने ही हो गया था। सूरदास ने गोसाई जी के सत्संग का एकाध स्थल पर संकेत करते हुए ब्रज के जिस वैभवपूर्ण जीवन का वर्णन किया है, उससे विदित होता है कि गोसाई जी को सूरदास के जीवनकाल में ही सम्राट अकबर की ओर से वह सुविधा और सहायता प्राप्त हो चुकी थी, जिसका उल्लेख संवत 1634 (सन 1577 ई.) तथा संवत 1638 विक्रमी (सन 1581 ई.) के शाही फरमानों में हुआ है। अत: यह अनुमान किया जा सकता है कि सूरदास संवत 1638 (सन 1581 ई.) या कम से कम संवत 1634 विक्रमी के बाद तक जीवित रहे होंगे। मौटे तौर पर कहा जा सकता है कि वे संवत 1640 विक्रमी अथवा सन् 1582-83 ई. के आसपास गोकुलवासी हुए होंगे। इन तिथियों के आधार पर भी उनका जन्म संवत 1535 विक्रमी (सन 1478 ई.) के आसपास पड़ता है क्योंकि वे 30-32 वर्ष की अवस्था में पुष्टिमार्ग में दीक्षित हुए थे। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में अकबर और सूरदास की भेंट का वर्णन हुआ है। गोसाई हरिराय के अनुसार यह भेंट तानसेन ने करायी थी। तानसेन संवत 1621 (सन 1564 ई.) में अकबर के दरबार में आये थे। अकबर के राज्य काल की राजनीतिक घटनाओं पर विचार करते हुए यह अनुमान किया जा सकता है कि वे संवत 1632-33 (सन 1575-76 ई.) के पहले सूरदास से भेंट नहीं कर पाये होंगे, क्योंकि संवत 1632 में (सन 1575 ई.) उन्होंने फतेहपुर सीकरी में इबादतखाना बनवाया था तथा संवत 1633 (सन 1576 ई.) तक वे उत्तरी भारत के साम्राज्य को पूर्ण रूप में अपने अधीन कर उसे संगठित करने में व्यस्त रहे थे। गोसाई विट्ठलनाथ से भी अकबर ने इसी समय के आसपास भेंट की थी।

जाति

सूरदास की जाति के सम्बन्ध में भी बहुत वाद-विवाद हुआ है। 'साहित्य लहरी' के उपर्युक्त पद के अनुसार कुछ समय तक सूरदास को भट्ट या ब्रह्मभट्ट माना जाता रहा। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने इस विषय में प्रसन्नता प्रकट की थी कि सूरदास महाकवि चन्दबरदाई के वंशज थे किन्तु बाद में अधिकतर पुष्टिमार्गीय स्रोतों के आधार पर यह प्रसिद्ध हुआ कि वे सारस्वत ब्राह्मण थे। बहुत कुछ इसी आधार पर 'साहित्य लहरी' का वंशावली वाला पद अप्रामाणिक माना

गया। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में मूलत: सूरदास की जाति के विषय में कोई उल्लेख नहीं था परन्तु गोसाई हरिराय द्वारा बढ़ाये गये 'वार्ता' के अंश में उन्हें सारस्वत ब्राह्मण कहा गया है। उनके सारस्वत ब्राह्मण होने के प्रमाण पुष्टिमार्ग के अन्य वार्ता साहित्य से भी दिये गये है। अत: अधिकतर यही माना जाने लगा है कि सूरदास सारस्वत ब्राह्मण थे यद्यपि कुछ विद्वानों को इस विषय में अब भी सन्देह है। **डॉ. मंशीराम शर्मा** ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि सूरदास ब्रह्मभट्ट ही थे। यह सम्भव है कि ब्रह्मभट्ट होने के नाते ही वे परम्परागत कवि-गायकों के वंशज होने के कारण सरस्वती पुत्र और सारस्वत नाम से विख्यात हो गये हों। अन्त: साक्ष्य से सूरदास के ब्राह्मण होने का कोई संकेत नहीं मिलता बल्कि इसके विपरीत अनेक पदों में उन्होंने ब्राह्मणों की हीनता का उल्लेख किया है। इस विषय में श्रीधर ब्राह्मण के अंग-भंग तथा महराने के पाँडेवाले प्रसंग दृष्टव्य हैं। ये दोनों प्रसंग 'भागवत' से स्वतन्त्र सूरदास द्वारा कल्पित हुए जान पड़ते हैं। इनमें सूरदास ने बड़ी निर्ममता पूर्वक ब्राह्मणत्व के प्रति निरादर का भाव प्रकट किया है। अजामिल तथा सुदामा के प्रसंगों में भी उनकी उच्च जाति का उल्लेख करते हुए सूर ने ब्राह्मणत्व के साथ कोई ममता नहीं प्रकट की। इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण 'सूरसागर' में ऐसा कोई संकेत नहीं मिलता, जिससे इसका किंचित् भी आभास मिल सके कि सूर ब्राह्मण जाति के सम्बन्ध में कोई आत्मीयता का भाव रखते थे। वस्तुत: जाति के सम्बन्ध में वे पूर्ण रूप से उदासीन थे। दानलीला के एक पद में उन्होंने स्पष्ट रूप में कहा है कि कृष्ण भक्ति के लिए उन्होंने अपनी जाति ही छोड़ दी थी। वे सच्चे अर्थों में हरिभक्तों की जाति के थे, किसी अन्य जाति से उनका कोई सम्बन्ध नहीं था।

'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में सूर का जीवनवृत्त गऊघाट पर हुई वल्लभाचार्य से उनकी भेंट के साथ प्रारम्भ होता है। गऊघाट पर भी उनके अनेक सेवक उनके साथ रहते थे तथा 'स्वामी' के रूप में उनकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गयी थी। कदाचित इसी कारण एक बार अरैल से जाते समय वल्लभाचार्य ने उनसे भेंट की और उन्हें पुष्टिमार्ग में दीक्षित किया। 'वार्ता' में वल्लभाचार्य और सूरदास के प्रथम भेंट का जो रोचक वर्णन दिया गया है, उससे व्यंजित होता है कि सूरदास उस समय तक कृष्ण की आनन्दमय ब्रजलीला से परिचित नहीं थे और वे वैराग्य भावना से प्रेरित होकर पतितपावन हरि की दैन्यपूर्ण दास्यभाव की भक्ति में अनुरक्त थे और इसी भाव के विनयपूर्ण पद रच कर गाते थे।

वल्लभाचार्य ने उनका 'धिधियाना' (दैन्य प्रकट करना) छुड़ाया और उन्हें भगवद्-लीला से परिचत कराया। इस विवरण के आधार पर कभी-कभी यह कहा जाता है कि सूरदास ने विनय के पदों की रचना वल्लभाचार्य से भेंट होने के पहले ही कर ली होगी परन्तु यह विचार भ्रमपूर्ण है वल्लभाचार्य द्वारा 'श्रीमद् भागवत' में वर्णित कृष्ण की लीला का ज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त सूरदास ने अपने पदों में उसका वर्णन करना प्रारम्भ कर दिया। 'वार्ता' में कहा गया है कि उन्होंने 'भागवत' के द्वादश स्कन्धों पर पद-रचना की। उन्होंने 'सहस्रावधि' पद रचे, जो 'सागर' कहलाये। वल्लभाचार्य के संसर्ग से सूरदास को 'माहात्म्यज्ञान पूर्वक प्रेम भक्ति' पूर्णरूप में सिद्ध हो गयी। वल्लभाचार्य ने उन्हें गोकुल में श्रीनाथ जी के मन्दिर पर कीर्तनकार के रूप में नियुक्त किया और वे आजन्म वहीं रहे।

पारसौली वह स्थान है, जहाँ पर कहा जाता है कि कृष्ण ने रासलीला की थी। इस समय सूरदास को आचार्य वल्लभ, श्रीनाथ जी और गोसाई विट्ठलनाथ ने श्रीनाथ जी की आरती करते समय सूरदास को अनुपस्थित पाकर जान लिया कि सूरदास का अन्त समय निकट आ गया है। उन्होंने अपने सेवकों से कहा कि, 'पुष्टिमार्ग का जहाज' जा रहा है, जिसे जो लेना हो ले ले। आरती के उपरान्त गोसाई जी रामदास, कुम्भनदास, गोविंदस्वामी और चतुर्भुजदास के साथ सूरदास के निकट पहुँचे और सूरदास को, जो अचेत पड़े हुए थे, चैतन्य होते हुए देखा। सूरदास ने गोसाई जी का साक्षात् भगवान के रूप में अभिनन्दन किया और उनकी भक्तवत्सलता की प्रशंसा की। चतुर्भुजदास ने इस समय शंका की कि सूरदास ने भगवद्यश तो बहुत गाया, परन्तु आचार्य वल्लभ का यशगान क्यों नहीं किया। सूरदास ने बताया कि उनके निकट आचार्य जी और भगवान में कोई अन्तर नहीं है-जो भगवद्यश है, वही आचार्य जी का भी यश है। गुरु के प्रति अपना भाव उन्होंने 'भरोसो दृढ़ इन चरनन केरो' वाला पद गाकर प्रकट किया। इसी पद में सूरदास ने अपने को 'द्विविध आन्धरो' भी बताया। गोसाई विट्ठलनाथ ने पहले उनके 'चित्त की वृत्ति' और फिर 'नेत्र की वृत्ति' के सम्बन्ध में प्रश्न किया तो उन्होंने क्रमशः बलि बलि बलि हों कुमरि राधिका नन्द सुवन जासों रति मानी' तथा 'खंजन नैन रूप रस माते' वाले दो पद गाकर सूचित किया कि उनका मन और आत्मा पूर्णरूप से राधा भाव में लीन है। इसके बाद सूरदास ने शरीर त्याग दिया।

'वार्ता' में सूरदास के जीवन की किसी अन्य घटना का उल्लेख नहीं है, केवल इतना बताया गया है कि वे भगवद्भक्तों को अपने पदों के द्वारा भक्ति

का भावपूर्ण सन्देश देते रहते थे। कभी-कभी वे श्रीनाथ जी के मन्दिर से नवनीत प्रिय जी के मन्दिर भी चले जाते थे किन्तु हरिराय ने कुछ अन्य चमत्कारपूर्ण रोचक प्रसंगों का उल्लेख किया है। जिनसे केवल यह प्रकट होता है कि सूरदास परम भगवदीय थे और उनके समसामयिक भक्त कुम्भनदास, परमानन्ददास आदि उनका बहुत आदर करते थे। 'वार्ता' में सूरदास के गोलोकवास का प्रसंग अत्यन्त रोचक है। श्रीनाथ जी की बहुत दिनों तक सेवा करने के उपरान्त जब सूरदास को ज्ञात हुआ कि भगवान की इच्छा उन्हें उठा लेने की है तो वे श्रीनाथ जी के मन्दिर में पारसौली के चन्द्र सरोवर पर आकर लेट गये और दूर से सामने ही फहराने वाली श्रीनाथ जी की ध्वजा का ध्यान करने लगे।

विवेकशील और चिन्तनशील व्यक्तित्त्व

सूरदास के काव्य से उनके बहुश्रुत, अनुभव सम्पन्न, विवेकशील और चिन्तनशील व्यक्तित्त्व का परिचय मिलता है। उनका हृदय गोप बालकों की भाँति सरल और निष्पाप, ब्रज गोपियों की भाँति सहज संवेदनशील, प्रेम-प्रवण और माधुर्यपूर्ण तथा नन्द और यशोदा की भाँति सरल-विश्वासी, स्नेह-कातर और आत्म-बलिदान की भावना से अनुप्रमाणित था। साथ ही उनमें कृष्ण जैसी गम्भीरता और विदग्धता तथा राधा जैसी वचन-चातुरी और आत्मोत्सर्गपूर्ण प्रेम विवशता भी थी। काव्य में प्रयुक्त पात्रों के विविध भावों से पूर्ण चरित्रों का निर्माण करते हुए वस्तुतः उन्होंने अपने महान व्यक्तित्त्व की ही अभिव्यक्ति की है। उनकी प्रेम-भक्ति के सख्य, वात्सल्य और माधुर्य भावों का चित्रण जिन आंख्य संचारी भावों, अनगिनत घटना-प्रसंगों, बाह्य जगत् प्राकृतिक और सामाजिक-के अनन्त सौन्दर्य चित्रों के आश्रय से हुआ है, उनके अन्तराल में उनकी गम्भीर वैराग्य-वृत्ति तथा अत्यन्त दीनतापूर्ण आत्म निवेदात्मक भक्ति-भावना की अन्तर्धारा सतत प्रवहमान रही है, परन्तु उनकी स्वाभाविक विनोदवृत्ति तथा हास्य प्रियता के कारण उनका वैराग्य और दैन्य उनके चित्त की अधिक ग्लानियुक्त और मलिन नहीं बना सका। आत्म हीनता की चरम अनुभूति के बीच भी वे उल्लास व्यक्त कर सके। उनकी गोपियाँ विरह की हृदय विदारक वेदना को भी हास-परिहास के नीचे दबा सकीं। करुण और हास्य का जैसा एकरस रूप सूर के काव्य में मिलता है, अन्यत्र दुर्लभ है। सूर ने मानवीय मनोभावों और चित्तवृत्तियों को, लगता है, निःशेष कर दिया है। यह तो उनकी विशेषता है ही परन्तु उनकी सबसे बड़ी विशेषता कदाचित यह है कि मानवीय भावों को वे

सहज रूप में उस स्तर पर उठा सके, जहाँ उनमें लोकोत्तरता का संकेत मिलते हुए भी उनकी स्वाभाविक रमणीयता अक्षुण्ण ही नहीं बनी रहती, बल्कि विलक्षण आनन्द की व्यंजना करती है। सूर का काव्य एक साथ ही लोक और परलोक को प्रतिबिम्बित करता है।

सूरदास की अन्धता

सामान्य रूप से यह प्रसिद्ध रहा है कि सूरदास जन्मान्ध थे और उन्होंने भगवान् की कृपा से दिव्य-दृष्टि पायी थी, जिसके आधार पर उन्होंने कृष्ण-लीला का आँखों देखा जैसा वर्णन किया। गोसाई हरिराय ने भी सूरदास को जन्मान्ध बताया है। परन्तु उनके जन्मान्ध होने का कोई स्पष्ट उल्लेख उनके पदों में नहीं मिलता। 'चौरासी वार्ता' के मूल रूप में भी इसका कोई संकेत नहीं। जैसा पीछे कहा जा चुका है, उनके अन्धे होने का उल्लेख केवल अकबर की भेंट के प्रसंग में हुआ है। 'सूरसागर' के लगभग 7-8 पदों में की प्रत्यक्ष रूप से और कभी प्रकारान्तर से सूर ने अपनी हीनता और तुच्छता का वर्णन करते हुए अपने को अन्धा कहा है। सूरदास के सम्बन्ध में जितनी किंवदान्तियाँ प्रचलित हैं उन सब में उनके अन्धे होने का उल्लेख हुआ है। उनके कुएँ में गिरने और स्वयं कृष्ण के द्वारा उद्धार पाने एवं दृष्टि प्राप्त करने तथा पुनः कृष्ण से अन्धे होने का वरदान माँगने की घटना लोकविश्रुत है। बिल्वमंगल सूरदास के विषय में भी यह चमत्कारपूर्ण घटना कही-सुनी जाती है। इसके अतिरिक्त कवि मियाँसिंह ने तथा महाराज रघुराज सिंह ने भी कुछ चमत्कारपूर्ण घटनाओं का उल्लेख किया है, जिससे उनकी दिव्य-दृष्टि सम्पन्नता की सूचना मिलती है। नाभादास ने भी अपने 'भक्तमाल' में उन्हें दिव्य-दृष्टिसम्पन्न बताया है। निश्चय ही सूरदास एक महान कवि और भक्त होने के नाते असाधारण दृष्टि रखते थे किन्तु उन्होंने अपने काव्य में बाह्य जगत के जैसे नाना रूपों, रंगों और व्यापारों का वर्णन किया है, उससे प्रमाणित होता है कि उन्होंने अवश्य ही कभी अपने चर्म-चक्षुओं से उन्हें देखा होगा। उनका काव्य उनकी निरीक्षण-शक्ति की असाधारण सूक्ष्मता प्रकट करता है क्योंकि लोकमत उनके माहात्म्य के प्रति इतना श्रद्धालु रहा है कि वह उन्हें जन्मान्ध मानने में ही उनका गौरव समझती है, इसलिए इस सम्बन्ध में कोई साक्ष्य नहीं मिलता कि वे किसी परिस्थिति में दृष्टिहीन हो गये थे। हो सकता है कि वे वृद्धवस्था के निकट दृष्टि-विहीन हो गये हों परन्तु इसकी कोई स्पष्ट सूचना उनके पदों में नहीं मिलती। विनय के

पदों में वृद्धावस्था की दुर्दशा के वर्णन के अन्तर्गत चक्षु-विहीन होने का जो उल्लेख हुआ है, उसे आत्मकथा नहीं माना जा सकता, वह तो सामान्य जीवन के एक तथ्य के रूप में कहा गया है।

रचनाएँ

सूरदास जी द्वारा लिखित पाँच ग्रन्थ बताए जाते हैं-

1. सूरसागर,
2. सूरसारावली,
3. साहित्य-लहरी,
4. नल-दमयन्ती,
5. ब्याहलो।

उपरोक्त में अन्तिम दो ग्रंथ अप्राप्य हैं। नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हस्तलिखित पुस्तकों की विवरण तालिका में सूरदास के 16 ग्रन्थों का उल्लेख है। इनमें सूरसागर, सूरसारावली, साहित्य लहरी, नल-दमयन्ती, ब्याहलो के अतिरिक्त दशमस्कंध टीका, नागलीला, भागवत्, गोवर्धन लीला, सूरपचीसी, सूरसागर सार, प्राणप्यारी, आदि ग्रन्थ सम्मिलित हैं। इनमें प्रारम्भ के तीन ग्रंथ ही महत्त्वपूर्ण समझे जाते हैं।

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै।
जैसे उड़ि जहाज की पंछी, फिरि जहाज पै आवैघ
कमल-नैन को छाँड़ि महातम, और देव को ध्यावै।
परम गंग को छाँड़ि पियासो, दुरमति कूप खनावैघ
जिहिं मधुकर अंबुज-रस चाख्यो, क्यों करील-फल भाव।
'सूरदास' प्रभु कामधेनु तजि, छेरी कौन दुहावै।

'सूरसागर' के रचयिता

सूरदास की जीवनी के सम्बन्ध में कुछ बातों पर काफी विवाद और मतभेद है। सबसे पहली बात उनके नाम के सम्बन्ध में है। 'सूरसागर' में जिस नाम का सर्वाधिक प्रयोग मिलता है, वह सूरदास अथवा उसका संक्षिप्त रूप सूर ही है। सूर और सूरदास के साथ अनेक पदों में स्याम, प्रभु और स्वामी का प्रयोग भी हुआ है, परन्तु सूर-स्याम, सूरदास स्वामी, सूर-प्रभु अथवा सूरदास-प्रभु को कवि की छाप न मानकर सूर या सूरदास छाप के साथ स्याम, प्रभु या स्वामी

का समास समझना चाहिये। कुछ पदों में सूरज और सूरजदास नामों का भी प्रयोग मिलता है, परन्तु ऐसे पदों के सम्बन्ध में निश्चत पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वे सूरदास के प्रामाणिक पद हैं अथवा नहीं। 'साहित्य लहरी' के जिस पद में उसके रचयिता ने अपनी वंशावली दी है, उसमें उसने अपना असली नाम सूरजचन्द बताया है, परन्तु उस रचना अथवा कम से कम उस पद की प्रामाणिकता स्वीकार नहीं की जाती। निष्कर्षतः 'सूरसागर' के रचयिता का वास्तविक नाम सूरदास ही माना जा सकता है।

सूरसागरः संदिग्ध प्रामाणिकता

सूरदास की सर्वसम्मत प्रामाणिक रचना 'सूरसागर' है। एक प्रकार से 'सूरसागर' जैसा कि उसके नाम से सूचित होता है, उनकी सम्पूर्ण रचनाओं का संकलन कहा जा सकता है। 'सूरसागर' के अतिरिक्त 'साहित्य लहरी' और 'सूरसागर सारावली' को भी कुछ विद्वान् उनकी प्रामाणिक रचनाएँ मानते हैं, परन्तु इनकी प्रामाणिकता सन्दिग्ध है। सूरदास के नाम से कुछ अन्य तथाकथित रचनाएँ भी प्रसिद्ध हुई हैं, परन्तु वे या तो 'सूरसागर' के ही अंश हैं अथवा अन्य कवियों को रचनाएँ हैं। 'सूरसागर' के अध्ययन से विदित होता है कि कृष्ण की अनेक लीलाओं का वर्णन जिस रूप में हुआ है, उसे सहज ही खण्ड-काव्य जैसे स्वतन्त्र रूप में रचा हुआ भी माना जा सकता है। प्रायः ऐसी लीलाओं को पृथक रूप में प्रसिद्धि भी मिल गयी है। इनमें से कुछ हस्तलिखित रूप में तथा कुछ मुद्रित रूप में प्राप्त होती हैं। उदाहरण के लिए 'नागलीला' जिसमें कालियदमन का वर्णन हुआ है, 'गोवर्धन लीला', जिसमें गोवर्धनधारण और इन्द्र के शरणागमन का वर्णन है, 'प्राण प्यारी' जिसमें प्रेम के उच्चादर्श का पच्चीस दोहों में वर्णन हुआ है, मुद्रित रूप में प्राप्त हैं। हस्तलिखित रूप में 'व्याहलों' के नाम से राधा-कृष्ण विवाहसम्बन्धीप्रसंग, 'सूरसागर सार' नाम से रामकथा और रामभक्ति सम्बन्धी प्रसंग तथा 'सूरदास जी के दृष्टकूट' नाम से कूट-शैली के पद पृथक् ग्रन्थों में मिले हैं। इसके अतिरिक्त 'पद संग्रह', 'दशम स्कन्ध', 'भागवत', 'सूरसाठी' , 'सूरदास जी के पद' आदि नामों से 'सूरसागर' के पदों के विविध संग्रह पृथक् रूप में प्राप्त हुए है। ये सभी 'सूरसागर के' अंश हैं। वस्तुतः 'सूरसागर' के छोटे-बड़े हस्तलिखित रूपों के अतिरिक्त उनके प्रेमी भक्तजन समय-समय पर अपनी-अपनी रुचि के अनुसार 'सूरसागर' के अंशों को पृथक् रूप में लिखते-लिखाते रहे हैं। 'सूरसागर' का वैज्ञानिक रीति से सम्पादित

प्रामाणिक संस्करण निकल जाने के बाद ही कहा जा सकता है कि उनके नाम से प्रचलित संग्रह और तथाकथित ग्रन्थ कहाँ तक प्रमाणित है।

विशाल काव्य सर्जन

सूर की रचना परिमाण और गुण दोनों में महान कवियों के बीच अतुलनीय है। आत्माभिव्यंजना के रूप में इतने विशाल काव्य का सर्जन सूर ही कर सकते थे क्योंकि उनके स्वात्म में सम्पूर्ण युग जीवन की आत्मा समाई हुई थी। उनके स्वानुभूतिमूलक गीतिपदों की शैली के कारण प्राय: यह समझ लिया गया है कि वे अपने चारों ओर के सामाजिक जीवन के प्रति पूर्ण रूप में सजग नहीं थे परन्तु प्रचारित पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर यदि देखा जाय तो स्वीकार किया जाएगा कि सूर के काव्य में युग जीवन की प्रबुद्ध आत्मा का जैसा स्पन्दन मिलता है, वैसा किसी दूसरे कवि में नहीं मिलेगा।

यह अवश्य है कि उन्होंने उपदेश अधिक नहीं दिये, सिद्धान्तों का प्रतिपादन पण्डितों की भाषा में नहीं किया, व्यावहारिक अर्थात् सांसारिक जीवन के आदर्शों का प्रचार करने वाले सुधारक का बना नहीं धारण किया परन्तु मनुष्य की भावात्मक सत्ता का आदर्शीकृत रूप गढ़ने में उन्होंने जिस व्यवहार बुद्धि का प्रयोग किया है। उससे प्रमाणित होता है कि वे किसी मनीषी से पीछे नहीं थे। उनका प्रभाव सच्चे कान्ता सम्मित उपदेश की भाँति सीधे हृदय पर पड़ता है। वे निरे भक्त नहीं थे, सच्चे कवि थे–ऐसे दृष्टा कवि, जो सौन्दर्य के ही माध्यम से सत्य का अन्वेषण कर उसे मूर्त रूप देने में समर्थ होते हैं। युगजीवन का प्रतिबिम्ब होते हुए उसमें लोकोत्तर सत्य के सौन्दर्य का आभास देने की शक्ति महाकवि में ही होती है, निरे भक्त, उपदेशक और समाज सुधारक में नहीं।

महाकवि सूरदास का स्थान

धर्म, साहित्य और संगीत के सन्दर्भ में महाकवि सूरदास का स्थान न केवल हिन्दी भाषा क्षेत्र, बल्कि सम्पूर्ण भारत में मध्ययुग की महान विभूतियों में अग्रगण्य है। यह सूरदास की लोकप्रियता और महत्ता का ही प्रमाण है कि 'सूरदास' नाम किसी भी अन्धे भक्त गायक के लिए रूढ़ सा हो गया है। मध्ययुग में इस नाम के कई भक्त कवि और गायक हो गये हैं। अपने विषय में मध्ययुग के ये भक्त कवि इतने उदासीन थे कि उनका जीवन–वृत्त निश्चित रूप से पुन: निर्मित करना असम्भवप्राय है, परन्तु इतना कहा जा सकता है कि

'सूरसागर' के रचयिता सूरदास इस नाम के व्यक्तियों में सर्वाधिक प्रसिद्ध और महान थे और उन्हीं के कारण कदाचित यह नाम उपर्युक्त विशिष्ट अर्थ के द्योतक सामान्य अभिधान के रूप में प्रयुक्त होने लगा। ये सूरदास विट्ठलनाथ द्वारा स्थापित अष्टछाप के अग्रणी भक्त कवि थे और पुष्टिमार्ग में उनकी वाणी का आदर बहुत कुछ सिद्धान्त वाक्य के रूप में होता है।

सूरदास को हिंदी साहित्य का सूरज कहा जाता है। वे अपनी कृति "सूरसागर" के लिये प्रसिद्ध है। कहा जाता है की उनकी इस कृति में लगभग 100000 गीत है, जिनमें से आज केवल 8000 ही बचे हैं। उनके इन गीतों में कृष्ण के बचपन और उनकी लीला का वर्णन किया गया है। सूरदास कृष्ण भक्ति के साथ ही अपनी प्रसिद्ध कृति सूरसागर के लिये भी जाने जाते है। इतना ही नहीं सूरसागर के साथ उन्होंने सुर-सारावली और सहित्य-लहरी की भी रचना की है।

सूरदास की मधुर कवितायें और भक्तिमय गीत लोगों को भगवान् की तरफ आकर्षित करते थे। धीरे-धीरे उनकी ख्याति बढ़ती गयी, और मुगल शासक अकबर (1542-1605) भी उनके दर्शक बन गये। सूरदास ने अपने जीवन के अंतिम वर्षों को ब्रज में बिताया और भजन गाने के बदले उन्हें जो कुछ भी मिलता उन्हीं से उनका गुजारा होता था।

सूरदास जी को वल्लभाचार्य के आठ शिष्यों में प्रमुख स्थान प्राप्त था। इनकी मृत्यु सन 1583 ई. में पारसौली नामक स्थान पर हुई। कहा जाता है कि सूरदास ने सवा लाख पदों की रचना की। इनके सभी पद रागनियों पर आधारित हैं।

सूरदास के मत अनुसार श्री कृष्ण भक्ति करने और उनके अनुग्रह प्राप्त होने से मनुष्य जीव आत्मा को सद्गति प्राप्त हो सकती है। सूरदास ने वात्सल्य रस, शांत रस, और श्रिंगार रस को अपनाया था। सूरदास ने केवल अपनी कल्पना के सहारे श्री कृष्ण के बाल्य रूप का अदभुत, सुंदर, दिव्य वर्णन किया था। जिसमें बाल-कृष्ण की चपलता, स्पर्धा, अभिलाषा, और आकांक्षा का वर्णन कर के विश्वव्यापी बाल-कृष्ण स्वरूप का वर्णन प्रदर्शित किया था।

सूरदास ने अत्यंत दुर्लभ ऐसा "भक्ति और श्रृंगार" को मिश्रित कर के, संयोग वियोग जैसा दिव्य वर्णन किया था, जिसे किसी और के द्वारा पुनः रचना अत्यंत कठिन होगा। स्थान-स्थान पर सूरदास के द्वारा लिखित कूट पद बेजोड़ हैं। यशोदा मैया के पात्र के शील गुण पर सूरदास लिखे चित्रण प्रशंसनीय हैं।

सूरदास के द्वारा लिखी गई कविताओं में प्रकृति–सौन्दर्य का सुंदर, अदभुत वर्णन किया गया है। सूरदास कविताओं में पूर्व कालीन आख्यान, और ऐतिहासिक स्थानों का वर्णन निरंतर होता था।

विशेष तथ्य

1. सूरदास जी को 'खंजननयन, भावाधिपति, वात्सल्य रस सम्राट्, जीवनोत्सव का कवि पुष्टिमार्ग का जहाज' आदि नामों (विशेषणों) से भी पुकारा जाता है।
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इनको 'वात्सल्य रस सम्राट्' एवं 'जीवनोत्सव का कवि' कहा है।
3. गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने इनकी मृत्यु के समय इनको 'पुष्टिमार्ग का जहाज' कहकर पुकारा था। इनकी मृत्यु पर उन्होंने लोगों को सम्बोधित करते हुए कहा था–

   ''पुष्टिमार्ग को जहाज जात है सो जाको कछु लेना होय सो लेउ।''
4. हिन्दी साहित्य जगत् में 'भ्रमरगीत' परम्परा का समावेश सूरदास(Surdas) द्वारा ही किया हुआ माना जाता है।
5. 'सूरोच्छिर्ष्ट जगत्सर्वम्' अर्थात् आचार्य शुक्ल के अनुसार इनके परवर्ती कवि सूरदासजी की जूठन का ही प्रयोग करते हैं, क्योंकि साहित्य जगत् में ऐसा कोई शब्द और विषय नहीं है, जो इनके काव्य में प्रयुक्त नहीं हुआ हो।
6. कुछ इतिहासकारों के अनुसार ये चंदबरदाई के वंशज कवि माने गये हैं।
7. आचार्य शुक्ल ने कहा है, ''सूरदास की भक्ति पद्धति का मेरुदण्ड पुष्टिमार्ग ही है।''
8. सूरदास जी ने भक्ति पद्धति के ग्यारह रूपों का वर्णन किया है।
9. संस्कृत साहित्य में महाकवि 'माघ' की प्रशंसा में यह श्लोक पढ़ा जाता हैं–

''उपमा कालिदासस्य, भारवेरर्थगौरवम्।
दण्डिनः पदलालित्यं, माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥''

इसी श्लोक के भाव को ग्रहण करके 'सूर' की स्तुति में भी किसी हिन्दी कवि ने यह पद लिखा है–

"उत्तम पद कवि गंग के, कविता को बल वीर।
केशव अर्थ गँभीर को, सूर तीन गुण धीर॥"

10. हिन्दी साहित्य जगत् में सूरदासजी सूर्य के समान, तुलसीदासजी चन्द्रमा के समान, केशवदासजी तारे के समान तथा अन्य सभी कवि जुगनुओं (खद्योत) के समान यहाँ-वहाँ प्रकाश फैलाने वाले माने जाते हैं। यथा–
"सूर सूर तुलसी ससि, उडूगन केशवदास।
और कवि खद्योत सम, जहँ तहँ करत प्रकास।।"
11. सूर(Surdas) के भावचित्रण में वात्सल्य भाव को श्रेष्ठ कहा जाता है। आचार्य शुक्ल ने लिखा है, "सूर अपनी आँखों से वात्सल्य का कोना-कोना छान आये हैं।"

सूर-काव्य का मुख्य विषय कृष्णभक्ति है।'भागवत' पुराण को उपजीव्य मान कर उन्होंने राधा-कृष्ण की अनेक लीलाओं का वर्णन 'सूरसागर' में किया है। 'भागवत' के द्वादश स्कंधों से अनुरूपता के कारण कुछ विद्वान इसे 'भागवत' का अनुवाद समझने की भूल कर बैठते हैं, किंतु वस्तुतः सूर के पदों का क्रम स्वंतत्र है।

वैसे, उनके मन में 'भागवत' पुराण की पूर्ण निष्ठा है। उन्होंने कृष्ण-चरित्र के उन भावात्मक स्थलों को चुना है, जिनमें उनकी अंतरात्मा की गहरी अनुभूति पैठ सकी है।

उन्होंने श्रीकृष्ण के शैशव और किशोर वय की विविध लीलाओं का चयन किया है, संभवतः यह सांप्रदायिक दृष्टि से किया गया हो। सूर की दृष्टि कृष्ण के लोकरंजक रूप पर ही अधिक रही है, उनके द्वारा दुष्ट-दलन आदि का वर्णन सामान्य रूप से ही किया जाता है।

लीला-वर्णन में कवि का ध्यान मुख्यतः भाव-चित्रण पर रहा है। विनय और दैन्य-प्रदर्शन के प्रसंग में जो पद सूर ने लिखे हैं, उनमें भी उच्चकोटि के भावों का समावेश है।

सूर के भाव-चित्रण में वात्सल्य भाव को श्रेष्ठतम कहा जाता है। बाल-भाव और वात्सल्य से सने मातृहृदय के प्रेम-भावों के चित्रण में सूर अपना सानी नहीं रखते। बालक को विविध चेष्टाओं और विनोदों के क्रीड़ास्थल मातृहृदय की अभिलाषाओं, उत्कंठाओं और भावनाओं के वर्णन में सूरदास हिंदी के सर्वश्रेष्ठ कवि ठहरते हैं।

वात्सल्य भाव के पदों की विशेषता यह है कि उनको पढ़ कर पाठक जीवन की नीरस और जटिल समस्याओं को भूल कर उनमें मग्न हो जाता है। दूसरी ओर भक्ति के साथ शृंगार को जोड़ कर उसके संयोग और वियोग पक्षों का जैसा मार्मिक वर्णन सूर ने किया है, अन्यत्र दुर्लभ है।

प्रवासजनित वियोग के संदर्भ में भ्रमरगीत-प्रंसग तो सूर के काव्य-कला का उत्कृष्ट निदर्शन है। इस अन्योक्ति एवं उपालंभकाव्य में गोपी-उद्धव-संवाद को पढ़ कर सूर की प्रतिभा और मेधा का परिचय प्राप्त होता है। सूरदास के भ्रमरगीत में केवल दार्शनिकता और अध्यात्मिक मार्ग का उल्लेख नहीं है, वरन् उसमें काव्य के सभी श्रेष्ठ उपकरण उपलब्ध होते हैं। सगुण भक्ति का ऐसा सबल प्रतिपादन अन्यत्र देखने में नहीं आता।

इस प्रकार सूर-काव्य में प्रकृति-सौंदर्य, जीवन के विविध पक्षों, बालचरित्र के विविध प्रंसगों, कीड़ाओं, गोचारण, रास आदि का वर्णन प्रचुर मात्रा में मिलता हैं। रूपचित्रण के लिए नख-शिख-वर्णन को सूर ने अनेक बार स्वीकार किया है। ब्रज के पर्वों, त्योहारों, वर्षोत्सवों आदि का भी वर्णन उनकी रचनाओं में है।

सूर की समस्त रचना को पदरचना कहना ही समीचीन हैं। ब्रजभाषा के अग्रदूत सूरदास ने इस भाषा को जो गौरव-गरिमा प्रदान की, उसके परिणामस्वरूप ब्रजभाषा अपने युग में काव्यभाषा के राजसिंहासन पर आसीन हो सकी। सूर की ब्रजभाषा में चित्रात्मकता, आलंकारिता, भावात्मकता, सजीवता, प्रतीकात्मकता तथा बिंबात्मकता पूर्ण रूप से विद्यमान हैं।

ब्रजभाषा को ग्रामीण जनपद से हटा कर उन्होंने नगर और ग्राम के संधिस्थल पर ला बिठाया था। संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रचुर प्रयोग करने पर भी उनकी मूल प्रवृति ब्रजभाषा को सुंदर और सुगम बनाये रखने की ओर ही थी। ब्रजभाषा की ठेठ माधुरी यदि संस्कृत, अरबी-फारसी के शब्दों के साथ सजीव शैली में जीवित रही है, तो वह केवल सूर की भाषा में ही है। अवधी और पूरबी हिंदी के भी शब्द उनकी भाषा में ही हैं। कतिपय विदेश शब्द भी यत्र- तत्र उपलब्ध हो जाते हैं। भाषा की सजीवता के लिए मुहावरों और लोकोक्तियों का पुट उनकी भाषा का सौंदर्य है। भ्रमरगीत के पदों में तो अनेक लोकोक्तियां मणिकांचन-संयोग की तरह अनुस्यूत हैं। भाषा में प्रवाह बनाये रखने के लिए लय और संगीत पर कवि का सतत् ध्यान रहा है।

राग-रागिनियों के स्वर-ताल में बंधी हुई शब्दावली जैसी सरस भाव-व्यंजना करती है, वैसी सामान्य पदावली नहीं कर सकती। वर्णनमैत्री और संगीतात्मकता

सूर की ब्रजभाषा के अलंकरण हैं। सूर की भक्तिपद्धति का मेरुदंड पुष्टिमार्गीय भक्ति है। भगवान की भक्त पर कृपा का नाम ही पोषण है—'पोषण तद्नुग्रह:'। पोषण के भाव स्पष्ट करने के लिए भक्ति के दो रूप बताये गये हैं-साधन—रूप और साध्य-रूप। साधन-भक्ति में भक्ति भक्त को प्रयत्न करना होता है, किंतु साध्य-रूप में भक्त सब-कुछ विसर्जित करके भगवान की शरण में अपने को छोड़ देता है।

पुष्टिमार्गीय भक्ति को अपनाने के बाद प्रभु स्वयं अपने भक्त का ध्यान रखते हैं, भक्त तो अनुग्रह पर भरोसा करके शांत बैठ जाता है। इस मार्ग में भगवान के अनुग्रह पर ही सर्वाधिक बल दिया जाता है। भगवान का अनुग्रह ही भक्त का कल्याण करके उसे इस लोक से मुक्त करने में सफल होता है--

जा पर दीनानाथ ढरै।
सोइ कुलीन बड़ौ सुंन्दर सोइ जा पर कृपा करै।
सूर पतित तरि जाय तनक में जो प्रभु नेक ढरै॥

भगवत्कृपा की प्राप्ति के लिए सूर की भक्तिपद्धति में अनुग्रह का ही प्राधान्य है-ज्ञान, योग, कर्म, यहां यहां तक कि उपासना भी निरर्थक समझी जाती है।

सूरदास के भ्रमरगीत की मुख्य विशेषताएँ–

(1) सूरदास ने अपने भ्रमर गीत में निर्गुण ब्रह्म का खंडन किया है।
(2) भ्रमरगीत में गोपियों के कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम को दर्शाया गया है।
(3) भ्रमरगीत में उद्धव व गोपियों के माध्यम से ज्ञान को प्रेम के आगे नतमस्तक होते हुए बताया गया है, ज्ञान के स्थान पर प्रेम को सर्वोपरि कहा गया है।
(4) भ्रमरगीत में गोपियों द्वारा व्यंग्यात्मक भाषा का प्रयोग किया गया है।
(5) भ्रमरगीत में उपालंभ की प्रधानता है।
(6) भ्रमरगीत में ब्रजभाषा की कोमलकांत पदावली का प्रयोग हुआ है। यह मधुर और सरस है।
(7) भ्रमरगीत प्रेमलक्षणा भक्ति को अपनाता है। इसलिए इसमें मर्यादा की अवहेलना की गई है।
(8) भ्रमरगीत में संगीतात्मकता का गुण विद्यमान है।

2

सूरदास की रचनाएँ

1.

अंखियां हरि-दरसन की प्यासी।
देख्यौ चाहति कमलनैन कौ, निसि-दिन रहति उदासी।।
आए ऊधै फिरि गए आंगन, डारि गए गर फांसी।
केसरि तिलक मोतिन की माला, वृन्दावन के बासी।।
काहू के मन को कोउ न जानत, लोगन के मन हांसी।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस कौ, करवत लैहौं कासी।।

2.

निसिदिन बरसत नैन हमारे।
सदा रहत पावस ऋतु हम पर, जबते स्याम सिधारे।।
अंजन थिर न रहत अँखियन में, कर कपोल भये कारे।
कंचुकि-पट सूखत नहिं कबहुँ, उर बिच बहत पनारे।।
आँसू सलिल भये पग थाके, बहे जात सित तारे।
'सूरदास' अब डूबत है ब्रज, काहे न लेत उबारे।।

3.

मधुकर! स्याम हमारे चोर।
मन हरि लियो सांवरी सूरत, चितै नयन की कोर।।
पकरयो तेहि हिरदय उर-अंतर प्रेम-प्रीत के जोर।

गए छुड़ाय छोरि सब बंधन दे गए हंसनि अंकोर।।
सोबत तें हम उचकी परी हैं दूत मिल्यो मोहिं भोर।
सूर-स्याम मुसकाहि मेरो सर्वस लै गए नंद किसोर।।

4.

बिनु गोपाल बैरिन भई कुंजैं।
तब ये लता लगति अति सीतल, अब भई विषम ज्वाल की पुंजैं।
बृथा बहति जमुना, खग बोलत, बृथा कमल फूलैं अलि गुंजैं।
पवन, पानी, धनसार, संजीवनि दधिसुत किरनभानु भई भुंजैं।
ये ऊधो कहियो माधव सों, बिरह करद करि मारत लुंजैं।
सूरदास प्रभु को मग जोवत, अंखियां भई बरन ज्यौं गुजैं।

5.

प्रीति करि काहू सुख न लह्यो।
प्रीति पतंग करी दीपक सों आपै प्रान दह्यो।।
अलिसुत प्रीति करी जलसुत सों, संपति हाथ गह्यो।
सारंग प्रीति करी जो नाद सों, सन्मुख बान सह्यो।।
हम जो प्रीति करी माधव सों, चलत न कछू कह्यो।
'सूरदास' प्रभु बिन दुख दूनो, नैननि नीर बह्यो।।

6.

राग गौरी

कहियौ, नंद कठोर भये।
हम दोउ बीरैं डारि परघरै, मानो थाती सौंपि गये।।
तनक-तनक तैं पालि बड़े किये, बहुतै सुख दिखराये।
गो चारन कों चालत हमारे पीछे कोसक धाये।।
ये बसुदेव देवकी हमसों कहत आपने जाये।
बहुरि बिधाता जसुमतिजू के हमहिं न गोद खिलाये।।
कौन काज यहि राजनगरि कौ, सब सुख सों सुख पाये।
सूरदास, ब्रज समाधान करु, आजु-कालिह हम आये।।

भावार्थ – श्रीकृष्ण अपने परम ज्ञानी सखा उद्धव को मोहान्ध ब्रजवासियों में ज्ञान प्रचार करने के लिए भेज रहे हैं। इस पद में नंद बाबा के प्रति संदेश भेजा है। कहते हैं– "बाबा, तुम इतने कठोर हो गये हो कि हम दोनों भाइयों को पराये घर में धरोहर की भांति सौंप कर चले गए। जब हम जरा-जरा से थे, तभी

से तुमने हमें पाल-पोसकर बड़ा किया, अनेक सुख दिए। वे बातें भूलने की नहीं। जब हम गाय चराने जाते थे, तब तुम एक कोस तक हमारे पीछे-पीछे दौड़ते चले आते थे। हम तो बाबा, सब तरह से तुम्हारे ही है। पर वसुदेव और देवकी का अनधिकार तो देखो। ये लोग नंद-यशोदा के कृष्ण-बलराम को आज "अपने जाये पूत" कहते हैं। वह दिन कब होगा, जब हमें यशोदा मैया फिर अपनी गोद में खिलायेंगी। इस राजनगरी, मथुरा के सुख को लेकर क्या करें ! हमें तो अपने ब्रज में ही सब प्रकार का सुख था। उद्धव, तुम उन सबको अच्छी तरह से समझा-बुझा देना, और कहना कि दो-चार दिन में हम अवश्य आयेंगे।"

शब्दार्थ – बीरैं =भाइयों को। परघरै =दूसरे के घर में। थाती = धरोहर। तनक-तनक तें =छुटपन से। कोसक =एक कोस तक। समाधान =सझना, शांति

7.

राग सारंग

नीके रहियौ जसुमति मैया।
आवहिंगे दिन चारि पांच में हम हलधर दोउ भैया।।
जा दिन तें हम तुम तें बिछुरै, कह्यौ न कोउ कन्हैया'।
कबहुं प्रात न कियौ कलेवा, सांझ न पीन्हीं पैया।।
वंशी बैत विषान दैखियौ द्वार अबेर सबेरो।
लै जिनि जाइ चुराइ राधिका कछुक खिलौना मेरो।।
कहियौ जाइ नंद बाबा सों, बहुत निठुर मन कीन्हौं।
सूरदास, पहुंचाइ मधुपुरी बहुरि न सोधौ लीन्हौं।

भावार्थ – 'कह्यौ न कोउ कन्हैया' यहां मथुरा में तो सब लोग कृष्ण और यदुराज के नाम से पुकारते है, मेरा प्यार का 'कन्हैया' नाम कोई नहीं लेता।ृलै जिनि जाइ चुराइ राधिका' राधिका के प्रति 12 वर्ष के कुमार कृष्ण का निर्मल प्रेम था, यह इस पंक्ति से स्पष्ट हो जाता है। राधा कहीं मेरा खिलौना न चुरा ले जाय, कैसी बालको-चित सरलोक्ति है।

शब्दार्थ – नीके रहियौ = कोई चिन्ता न करना। न पीन्हीं पैया = ताजे दूध की धार पीने को नहीं मिली। बिषान = सींग, (बजाने का)। अबेर सबेरी = समय-असमय, बीच-बीच में जब अवसर मिले। सोधौ =खबर भी

8.

राग देश

जोग ठगौरी ब्रज न बिकहै।
यह ब्योपार तिहारो ऊधौ, ऐसोई फिरि जैहै।।

यह जापे लै आये हौ मधुकर, ताके उर न समैहै।
दाख छांडि कैं कटुक निबौरी को अपने मुख खैहै॥
मूरी के पातन के कैना को मुकताहल दैहै।
सूरदास, प्रभु गुनहिं छांड़िकै को निरगुन निरबैहै॥

भावार्थ – उद्धव ने कृष्ण-विरहिणी ब्रजांगनाओं को योगभ्यास द्वारा निराकार ब्रह्म का साक्षात्कार करने के लिए जब उपदेश दिया, तो वे ब्रजवल्लभ उपासिनी गोपियां कहती हैं कि इस ब्रज में तुम्हारे योग का सौदा बिकने का नहीं। जिन्होंने सगुण ब्रह्म कृष्ण का प्रेम-रस-पान कर लिया, उन्हें तुम्हारे नीरस निर्गुण ब्रह्म की बातें भला क्यों पसन्द आने लगीं ! अंगूर छोड़कर कौन मूर्ख निबोरियां खायगा ? मोतियों को देकर कौन मूढ़ बदले में मूली के पत्ते खरीदेगा ? योग का यह ठग व्यवसाय प्रेमभूमि ब्रज में चलने का नहीं।

शब्दार्थ – ठगौरी = ठगी का सौदा। एसोइ फिरि जैहैं = योंही बिना बेचे वापस ले जाना होगा। जापै = जिसके लिए। उर न समैहै = हृदय में न आएगा। निबौरी =नींम का फल। मूरी = मूली। केना =अनाज के रूप में साग-भाजी की कीमत, जिसे देहात में कहीं-कहीं देकर मामूली तरकारियां खरीदते थे। मुकताहल = मोती। निर्गुन =सत्य, रज और तमोगुण से रहित निराकार ब्रह्म

9.

राग टोडी

ऊधो, होहु इहां तैं न्यारे।
तुमहिं देखि तन अधिक तपत है, अरु नयननि के तारे॥
अपनो जोग सैंति किन राखत, इहां देत कत डारे।
तुम्हरे हित अपने मुख करिहैं, मीठे तें नहिं खारे॥
हम गिरिधर के नाम गुननि बस, और काहि उर धारे।
सूरदास, हम सबै एकमत तुम सब खोटे कारे॥

भावार्थ – 'तुमहि..तारे,' तुम जले पर और जलाते हो, एक तो कृष्ण की विरहाग्नि से हम योंही जली जाती हैं, उस पर तुम योग की दाहक बातें सुना रहे हो। आंखें योंही जल रही है। हमारे जिन नेत्रों में प्यारे कृष्ण बस रहे हैं, उनमें तुम निर्गुण निराकार ब्रह्म बसाने को कह रहे हो। 'अपनो.....डारें', तुम्हारा योग-शास्त्र तो एक बहुमूल्य वस्तु है, उसे हम जैसी गंवार गोपियों के आगे क्यों व्यर्थ बरबाद कर रहे हो। 'तुम्हारे....खारे,' तुम्हारे लिए हम अपने मीठे को खारा

नहीं कर सकतीं, प्यारे मोहन की मीठी याद को छोड़कर तुम्हारे नीरस निर्गुण ज्ञान का आस्वादन भला हम क्यों करने चलीं ?

शब्दार्थ – न्यारे होहु = चले जाओ। सैंति = भली-भांति संचित करके। खोटे = बुरे

10.

राग केदारा

फिर फिर कहा सिखावत बात।
प्रात काल उठि देखत ऊधो, घर घर माखन खात।।
जाकी बात कहत हौ हम सों, सो है हम तैं दूरि।
इहं हैं निकट जसोदानन्दन प्रान-सजीवनि भूरि।।
बालक संग लियें दधि चोरत, खात खवावत डोलत।
सूर, सीस नीचौं कत नावत, अब नहिं बोलत।।

11.

राग रामकली

उधो, मन नाहीं दस बीस।
एक हुतो सो गयौ स्याम संग, को अवराधै ईस।।
सिथिल भई सबहीं माधौ बिनु जथा देह बिनु सीस।
स्वासा अटकिरही आसा लगि, जीवहिं कोटि बरीस।।
तुम तौ सखा स्यामसुन्दर के, सकल जोग के ईस।
सूरदास, रसिकन की बतियां पुरवौ मन जगदीस।।

टिप्पणी – गोपियां कहती है, मन तो हमारा एक ही है, दस-बीस मन तो हैं नहीं कि एक को किसी के लगा दें और दूसरे को किसी और में। अब वह भी नहीं है, कृष्ण के साथ अब वह भी चला गया। तुम्हारे निर्गुण ब्रह्म की उपासना अब किस मन से करें? 'स्वासा....बरीस,' गोपियां कहती हैं, "यों तो हम बिना सिर की-सी हो गई हैं, हम कृष्ण वियोगिनी हैं, तो भी श्याम-मिलन की आशा में इस सिर-विहीन शरीर में हम अपने प्राणों को करोड़ों वर्ष रख सकती हैं।" 'सकल जोग के ईस' क्या कहना, तुम तो योगियों में भी शिरोमणि हो। यह व्यंग्य है।

शब्दार्थ – हुतो =था। अवराधै = आराधना करे, उपासना करे। ईस =निर्गुण ईश्वर। सिथिल भई = निष्प्राण सी हो गई हैं। स्वासा = श्वास, प्राण। बरीश = वर्ष का अपभ्रंश। पुरवौ मन = मन की इच्छा पूरी करो

12.

राग टोडी

अंखियां हरि-दरसन की भूखी।
कैसे रहैं रूप-रस रांची ये बतियां सुनि रूखी॥
अवधि गनत इकटक मग जोवत तब ये तौ नहिं झूखी।
अब इन जोग संदेसनि ऊधो, अति अकुलानी दूखी॥
बारक वह मुख फेरि दिखावहुदुहि पय पिवत पतूखी।
सूर, जोग जनि नाव चलावहु ये सरिता हैं सूखी॥

भावार्थ – 'अंखियां.... रूखी,' जिन आंखों में हरि-दर्शन की भूल लगी हुई है, जो रूप- रस में रंगी जा चुकी हैं, उनकी तृप्ति योग की नीरस बातों से कैसे हो सकती है ? 'अवधि....दूखी,' इतनी अधिक खीझ इन आंखों को पहले नहीं हुई थी, क्योंकि श्रीकृष्ण के आने की प्रतीक्षा में अबतक पथ जोहा करती थीं। पर उद्धव, तुम्हारे इन योग के संदेशों से इनका दु:ख बहुत बढ़ गया है। 'जोग जनि....सूखी,' अपने योग की नाव तुम कहां चलाने आए हो? सूखी रेत की नदियों में भी कहीं नाव चला करती है? हम विरहिणी ब्रजांगनाओं को क्यों योग के संदेश देकर पीड़ित करते हो ? हम तुम्हारे योग की अधिकारिणी नहीं हैं।

शब्दार्थ – रांची =रंगी हुईं अनुरूप। अवधि = नियत समय। झूखी = दु:ख से पछताई खीजी। दु:खी =दु:खित हुई। बारक =एक बार। पतूखी =पत्तेश का छोटा-सा दाना

13.

राग मल्हार

ऊधो, हम लायक सिख दीजै।
यह उपदेस अगिनि तै तातो, कहो कौन बिधि कीजै॥
तुमहीं कहौ, इहां इतननि में सीखनहारी को है।
जोगी जती रहित माया तैं तिनहीं यह मत सोहै॥
कहा सुनत बिपरीत लोक में यह सब कोई कैहै।
देखौ धौं अपने मन सब कोई तुमहीं दूषन दैहै॥
चंदन अगरु सुगंध जे लेपत, का विभूति तन छाजै।
सूर, कहौ सोभा क्यों पावै आंखि आंधरी आंजै॥

भावार्थ – 'हम लायक,' हमारे योग्य, हमारे काम की। अधिकारी देखकर उपदेश दो। 'कहौ कीजै,' तुम्हीं बताओ, इसे किस तरह ग्रहण करे ?'विपरीत'

उलटा, स्त्रियों को भी कठिन योगाभ्यास की शिक्षा दी जा रही है, यह विपरीत बात सुनकर संसार क्या कहेगा ? 'आंखि आंधरी आंजै' अंधी स्त्री यदि आंखों में काजल लगाए तो क्या वह उसे शोभा देगा ? इसी प्रकार चंदन और कपूर का लेप करने वाली कोई स्त्री शरीर पर भस्म रमा ले तो क्या वह शोभा पायेगी ?

शब्दार्थ – सिख = शिक्षा, उपदेश। तातो =गरम। जती =यति, संन्यासी। यह मत सोहै = यह निर्गुणवाद शोभा देता है। कैहै =कहेगा। चंदन अगरु = मलयागिर चंदन विभूति =भस्म, भभूत। छाजै =सोहती है

14.

राग सारंग

ऊधो, मन माने की बात।
दाख छुहारो छांड़ि अमृतफल, बिषकीरा बिष खात॥
जो चकोर कों देइ कपूर कोउ, तजि अंगार अघात।
मधुप करत घर कोरि काठ में, बंधत कमल के पात॥
ज्यों पतंग हित जानि आपुनो दीपक सो लपटात।
सूरदास, जाकौ जासों हित, सोई ताहि सुहात॥

टिप्पणी – 'अंगार अघात,' तजि अंगार न अघात' भी पाठ है उसका भी यही अर्थ होता है, अर्थात् अंगार को छोड़कर दूसरी चीजों से उसे तृप्ति नहीं होती। 'तजि अंगार कि अघात' भी एक पाठान्तर है। उसका भी यही अर्थ है।

शब्दार्थ – 'अंगार अघात,' =अंगारों से तृप्त होता है, प्रवाद है कि चकोर पक्षी अंगार चबा जाता है। कोरि =छेदकर। पात =पत्ता

15.

राग काफी

निरगुन कौन देश कौ बासी।
मधुकर, कहि समुझाइ, सौंह दै बूझति सांच न हांसीघ
को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि को दासी।
कैसो बरन, भेष है कैसो, केहि रस में अभिलाषी।
पावैगो पुनि कियो आपुनो जो रे कहैगो गांसी।
सुनत मौन ह्वै रह्यौ ठगो-सौ सूर सबै मति नासी॥

टिप्पणी – गोपियां ऐसे ब्रह्म की उपासिकाएं हैं, जो उनके लोक में उन्हीं के समान रहता हो, जिनके पिता भी हो, माता भी हो और स्त्री तथा दासी भी हो। उसका सुन्दर वर्ण भी हो, वेश भी मनमोहक हो और स्वभाव भी सरस हो।

इसी लिए वे उद्धव से पूछती हैं, "अच्छी बात है, हम तुम्हारे निर्गुण ब्रह्म से प्रीति जोड़ लेंगी, पर इससे पहले हम तुम्हारे उस निर्गुण का कुछ परिचय चाहती हैं। वह किस देश का रहने वाला है, उसके पिता का क्या नाम है, उसकी माता कौन है, कोई उसकी स्त्री भी है, रंग गोरा है या सांवला, वह किस देश में रहता है, उसे क्या-क्या वस्तुएं पसंद हैं, यह सब बतला दो। फिर हम अपने श्यामसुन्दर से उस निर्गुण की तुलना करके बता सकेंगी कि वह प्रीति करने योग्य है या नहीं।" 'पावैगो....गांसी,' जो हमारी बातों का सीधा-सच्चा उत्तर न देकर चुभने वाली व्यंग्य की बातें कहेगा, उसे अपने किए का फल मिल जायगा।

शब्दार्थ – निरगुन = त्रिगुण से रहित ब्रह्म। सौंह =शपथ, कसम। बूझति =पूछती हैं। जनक =पिता। वरन =वर्ण, रंग। गांसी = व्यंग, चुभने वाली बात

16.

राग नट

कहियौ जसुमति की आसीस।
जहां रहौ तहं नंदलाडिले, जीवौ कोटि बरीस॥
मुरली दई, दौहिनी घृत भरि, ऊधो धरि लई सीस।
इह घृत तौ उनहीं सुरभिन कौ जो प्रिय गोप-अधीस॥
ऊधो, चलत सखा जुरि आये ग्वाल बाल दस बीस।
अबकैं ह्यां ब्रज फेरि बसावौ सूरदास के ईस॥

टिप्पणी – 'जहां रहौं......बरीस,' "प्यारे नंदनंदन, तुम जहां भी रहो, सदा सुखी रहो और करोड़ों वर्ष चिरंजीवी रहो। नहीं आना है, तो न आओ, मेरा वश ही क्या ! मेरी शुभकामना सदा तुम्हारे साथ बनी रहेगी, तुम चाहे जहां भी रहो।" 'मुरली.......सीस,' यशोदा के पास और देने को है ही क्या, अपने लाल की प्यारी वस्तुएं ही भेज रही हैं- बांसुरी और कृष्ण की प्यारी गौओं का घी। उद्धव ने भी बड़े प्रेम से मैया की भेंट सिरमाथे पर ले ली।

शब्दार्थ कोटि बरीस =करोड़ों वर्ष। दोहिनी =मिट्टी का बर्तन, जिसमें दूध दुहा जाता है, छोटी मटकिया। सुरभिन =गाय। जो प्रिय गोप अधीस = जो गौएं ग्वाल-बालों के स्वामी कृष्ण को प्रिय थीं। जुरि आए = इकट्ठे हो गए

17.

राग गोरी

कहां लौं कहिए ब्रज की बात।
सुनहु स्याम, तुम बिनु उन लोगनि जैसे दिवस बिहात॥

गोपी गाइ ग्वाल गोसुत वै मलिन बदन -सगात।
परमदीन जनु सिसिर हिमी हत अंबुज गन बिनु पात।।
जो कहुं आवत देखि दूरि तें पूंछत सब कुसलात।
चलन न देत प्रेम आतुर उर, कर चरननि लपटात।।
पिक चातक बन बसन न पावहिं, बायस बलिहिं न खात।
सूर, स्याम संदेसनि के डर पथिक न उहिं मग जात।।

भावार्थ – 'परमदीन....पात,' सारे ब्रजबासी ऐसे श्रीहीन और दीन दिखाई देते हैं, जैसे शिशिर के पाले से कमल कुम्हला जाता है और उसके पत्ते झुलस जाते हैं। 'पिक ....पावहिं,' कोमल और पपीहे विरहाग्नि को उत्तेजित करते हैं, अतः बेचारे इतने अधिक कोसे जाते हैं कि उन्होंने वहां बसेरा लेना भी छोड़ दिया है। 'बायस.......खात,' कहते हैं कि कौआ घर पर बैठा बोल रहा हो और उसे कुछ खाने को रख दिया जाय, तो उस दिन अपना कोई प्रिय परिजन या मित्र परदेश से आ जाता है। यह शकुन माना जाता है। पर अब कोए भी वहां जाना पसंद नहीं करते। वे बलि की तरफ देखते भी नहीं। यह शकुन भी असत्य हो गया।

शब्दार्थ – विहात =बीतते हैं। मलिन बदन = उदास। सिसिर हिमी हत = शिशिर ऋतु के पाले से मारे हुए। बिनु पात = बिना पत्ते के। कुसलात = कुशल-क्षेम। बायस =कौआ। बलि भोजन का भाग

18.

राग मारू

ऊधो, मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं।
बृंदावन गोकुल तन आवत सघन तृनन की छाहीं।।
प्रात समय माता जसुमति अरु नंद देखि सुख पावत।
माखन रोटी दह्यो सजायौ अति हित साथ खवावत।।
गोपी ग्वाल बाल संग खेलत सब दिन हंसत सिरात।
सूरदास, धनि-धनि ब्रजबासी जिनसों हंसत ब्रजनाथ।।

शब्दार्थ – गोकुल तन = गोकुल की तरफ। तृनन की = वृक्ष-लता आदि की। हित =स्नेह। सिरात = बीतता था।

भावार्थ – निर्मोही मोहन को अपने ब्रज की सुध आ गई। व्याकुल हो उठे, बाल्यकाल का एक-एक दृष्य आंखों में नाचने लगा। वह प्यारा गोकुल, वह सघन लताओं की शीतल छाया, वह मैया का स्नेह, वह बाबा का प्यार, मीठी-मीठी

माखन रोटी और वह सुंदर सुगंधित दही, वह माखन-चोरी और ग्वाल बालों के साथ वह ऊधम मचाना ! कहां गये वे दिन? कहां गई वे घड़ियां

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै।
जैसे उड़ि जहाज की पंछी, फिरि जहाज पै आवै।।
कमल-नैन को छाँड़ि महातम, और देव को ध्यावै।
परम गंग को छाँड़ि पियासो, दुरमति कूप खनावै।।
जिहिं मधुकर अंबुज-रस चाख्यो, क्यों करील-फल भाव।
'सूरदास' प्रभु कामधेनु तजि, छेरी कौन दुहावै।।

सूरसागर

सूरश्याम मंदिर, सूरकुटी, सूर सरोवर, आगरा

सूरदास की जीवनी के सम्बन्ध में कुछ बातों पर काफी विवाद और मतभेद हैं। सबसे पहली बात उनके नाम के सम्बन्ध में है। 'सूरसागर' में जिस नाम का सर्वाधिक प्रयोग मिलता है, वह सूरदास अथवा उसका संक्षिप्त रूप 'सूर' ही है। सूर और सूरदास के साथ अनेक पदों में स्याम, प्रभु और स्वामी का प्रयोग भी हुआ है, परन्तु सूर-स्याम, सूरदास स्वामी, सूर-प्रभु अथवा सूरदास-प्रभु को कवि की छाप न मानकर सूर या सूरदास छाप के साथ स्याम, प्रभु या स्वामी का समास समझना चाहिये।

कुछ पदों में सूरज और सूरजदास नामों का भी प्रयोग मिलता है, परन्तु ऐसे पदों के सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वे सूरदास के प्रामाणिक पद हैं अथवा नहीं। 'साहित्य लहरी' के जिस पद में उसके रचयिता ने अपनी वंशावली दी है, उसमें उसने अपना असली नाम सूरजचन्द बताया है, परन्तु उस रचना अथवा कम-से-कम उस पद की प्रामाणिकता स्वीकार नहीं की जाती। निष्कर्षतः 'सूरसागर' के रचयिता का वास्तविक नाम सूरदास ही माना जा सकता है।

सूरदास, सूरकुटी, सूर सरोवर, आगरा

सूरदास की सर्वसम्मत प्रामाणिक रचना 'सूरसागर' है। एक प्रकार से 'सूरसागर' जैसा कि उसके नाम से सूचित होता है, उनकी सम्पूर्ण रचनाओं का संकलन कहा जा सकता है। 'सूरसागर' के अतिरिक्त 'साहित्य लहरी' और

'सूरसागर सारावली' को भी कुछ विद्वान् उनकी प्रामाणिक रचनाएँ मानते हैं, परन्तु इनकी प्रामाणिकता सन्दिग्ध है। सूरदास के नाम से कुछ अन्य तथाकथित रचनाएँ भी प्रसिद्ध हुई हैं, परन्तु वे या तो 'सूरसागर' के ही अंश हैं अथवा अन्य कवियों को रचनाएँ हैं।

'सूरसागर' के अध्ययन से विदित होता है कि श्री–ष्ण की अनेक लीलाओं का वर्णन जिस रूप में हुआ है, उसे सहज ही खण्डकाव्य जैसे स्वतन्त्र रूप में रचा हुआ भी माना जा सकता है। प्रायः ऐसी लीलाओं को पृथक् रूप में प्रसिद्धि भी मिल गयी है। इनमें से कुछ हस्तलिखित रूप में तथा कुछ मुद्रित रूप में प्राप्त होती हैं। उदाहरण के लिए 'नागलीला' जिसमें कालिय दमन का वर्णन हुआ है, 'गोवर्धन लीला', जिसमें गोवर्धनधारण और इन्द्र के शरणागमन का वर्णन है, 'प्राण प्यारी' जिसमें प्रेम के उच्चादर्श का पच्चीस दोहों में वर्णन हुआ है, मुद्रित रूप में प्राप्त हैं।

हस्तलिखित रूप में 'व्याहलों' के नाम से राधा––ष्ण विवाह सम्बन्धी प्रसंग, 'सूरसागर सार' नाम से रामकथा और रामभक्ति सम्बन्धी प्रसंग तथा 'सूरदास जी के दृष्टकूट' नाम से कूट–शैली के पद पृथक् ग्रन्थों में मिले हैं। इसके अतिरिक्त 'पद संग्रह', 'दशम स्कन्ध', 'भागवत', 'सूरसाठी' , 'सूरदास जी के पद' आदि नामों से 'सूरसागर' के पदों के विविध संग्रह पृथक् रूप में प्राप्त हुए है। ये सभी 'सूरसागर के' अंश हैं। वस्तुतः 'सूरसागर' के छोटे–बड़े हस्तलिखित रूपों के अतिरिक्त उनके प्रेमी भक्तजन समय–समय पर अपनी–अपनी रुचि के अनुसार 'सूरसागर' के अंशों को पृथक् रूप में लिखते–लिखाते रहे हैं। 'सूरसागर' का वैज्ञानिक रीति से सम्पादित प्रामाणिक संस्करण निकल जाने के बाद ही कहा जा सकता है कि उनके नाम से प्रचलित संग्रह और तथाकथित ग्रन्थ कहाँ तक प्रमाणित हैं।

इसका मुख्य उपजीव्य (आधार स्त्रोत) श्रीमद्भागवतपुराण के दशम स्कंध का 46 वाँ व 47 वाँ अध्याय माना जाता है।

इसका सर्वप्रथम प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा करवाया गया था। भागवत पुराण की तरह इसकाक पद रचे गये हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा हैं–''सूरसागर किसी चली आती हुई गीतकाव्य परंपरा का, चाहे वह मौखिक ही रही हो, पूर्ण विकास सा प्रतीत होता है।''

1. हिंदी साहित्य योजना से जुड़ें
2. साहित्यलहरी–विभाजन भी बारह स्कन्धों में किया गया है।

3. इसके दसवें स्कंध में सर्वाधिक पद रचे गये हैं।
4. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा हैं–''सूरसागर किसी चली आती हुई गीतकाव्य परंपरा का, चाहे वह मौखिक ही रही हो, पूर्ण विकास सा प्रतीत होता है।''

   हिंदी साहित्य योजना से जुड़ें

   साहित्यलहरी–

1. यह इनका रीतिपरक काव्य माना जाता है।
2. इसमें दृष्टकूट (अर्थगोपन या रहस्यपूर्ण अर्थ शैली) पदों में राधा-कृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया गया है।
3. अलंकार निरुपण दृष्टि से भी इस ग्रंथ का अत्यधिक महत्त्व माना जाता है।

सूरसारावली

नोट– यह इनकी विवादित या अप्रामाणिक रचना मानी जाती है।

विशेष–डॉ. दीनदयालु गुप्त ने इनके द्वारा रचित पच्चीस पुस्तकों का उल्लेख किया है, जिनमें से निम्न सात पुस्तकों का प्रकाशन हो चुका हैं––

1. सूरसागर
2. साहित्य लहरी
3. सूरसारावली
4. सूरपचीसी
5. सूररामायण
6. सूरसाठी
7. राधारसकेली

3

सूरदास का काव्य

महाकवि सूरदास हिन्दी के श्रेष्ठ भक्त कवि थे। उनका संपूर्ण काव्य ब्रजभाषा का श्रृंगार है, जिसमें विभिन्न राग, रागनियों के माध्यम से एक भक्त हृदय के भावपूर्ण उद्‌गार व्यक्त हुए हैं। कृष्ण, गाय, वृंदावन, गोकुल, मथुरा, यमुना, मधुवन, मुरली, गोप, गोपी आदि के साथ-साथ संपूर्ण ब्रज-जीवन, संस्कृति एवं सभ्यता के संदर्भ में उनकी वीणा ने जो कुछ गाया, उसके स्वर और शब्द, शताब्दियां बीत जाने पर भी भारतीय काव्य की संगीत के रूप में व्याप्त हैं। उनके काव्य का अंतरंग एवं बहिरंग पक्ष अत्यंत सुदृढ़ और प्रौढ़ है तथा अतुलित माधुर्य, अनुपम सौंदर्य और अपरिमित सौष्ठव से भरा पड़ा है।

काव्य पक्ष

काव्य के मुख्य रूप से दो पक्ष होते हैं-

भावपक्ष

कलापक्ष

भावपक्ष काव्य का आंतरिक गुण है। इसका संबंध कवि की सहृदयता और भावुकता से होता है। काव्य के शरीर तत्त्व को कलापक्ष कहते हैं। इसका संबंध

कवि की चतुरता और रचना-कौशल से होता है। भावपक्ष एवं कलापक्ष से समन्वित काव्य ही श्रेष्ठ काव्य का उदाहरण माना जाता है।

भावपक्ष

महाकवि सूरदास का 'सूरसागर' वास्तव में रस का महासागर है। इसमें भावों की विविधता और अनेक रूपता के सहज दर्शन होते हैं। मानव हृदय की गहराइयों में डूबने वाले कवि से यही आशा और अपेक्षा भी होती है। अपने सीमित क्षेत्र में भी नवीन उद्‌भावनाओं, कोमल कल्पनाओं आदि के कारण ही सूरदास हिंदी साहित्य के सवश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। सूरदास की कविता के भावपक्ष को निम्न प्रकार से देखा जा सकता है-

वस्तु-वर्णन

वर्ण्य-विषय की दृष्टि से सूरदास के संपूर्ण काव्य को प्रमुखतः छः भागों में बांटकर देखा जा सकता है-

(1) विनय के पद,
(2) बालक कृष्ण से संबंधित पद,
(3) कृष्ण के रूप-सौंदर्य संबंधी पद,
(4) कृष्ण और राधा के रति भाव संबंधी पद,
(5) मुरली संबंधी पद, और
(6) वियोग श्रृंगार के भ्रमरगीत के पद।

विनय के पदों में सूरदास ने विनय की संपूर्ण भूमिकाओं एवं वैष्णव भक्ति संबंधी समस्त नियमों के अनुकूल विनम्रता, निरभिमानता, निष्कपटता, इष्टदेव की महत्ता, भक्त की लघुता आदि का निरूपण बड़ी सजीवता के साथ किया है। कृष्ण के बाल-जीवन संबंधी पदों में सूरदास की अद्‌भुत कला के दर्शन होते हैं। सूरदास ने बाल-जीवन का ऐसा जीता-जागता चित्र अंकित किया है, जिसमें मनोवैज्ञानिकता, सरसता और चित्ताकर्षकता, सभी विद्यमान हैं। कृष्ण के रूप-माधुर्य संबंधी पदों में सूरदास ने अपने इष्टदेव कृष्ण के अनंत सौंदर्य की ऐसी झांकी प्रस्तुत की है, जिसे देखकर सभी का हृदय अनायास ही उस सौंदर्य पर न्यौछावर हो जाता है। कृष्ण और राधा के रति संबंधी पदों में सूरदास कृष्ण के साथ राधा को महत्वपूर्ण स्थान देते हुए उन्हें आराध्य देवी के पद पर प्रतिष्ठित करते हैं। मुरली संबंधी पदों में सूरदास मुरली को एक साधारण मनोमुग्धकारी

यंत्र से अधिक व्यापक अर्थ प्रदान करते हैं। और आखिर में वियोग संबंधी भ्रमरगीत के पदों में सूरदास की कला के सर्वोत्कृष्ट रूप का दर्शन होता है। इन पदों में सूरदास ने सरसता, वाग्वैदग्ध्य एवं माधुर्य के साथ-साथ उद्धव संदेश, गोपियों की झुंझुलाहट, प्रेमातिरेक, व्यंग्य-विनोद, हास-परिहास, उपालंभ, उदारता, सहज चपलता, विरहोंन्माद, वचन-वक्रता आदि का अद्‌भुत वर्णन किया है। स्पष्ट है कि सूरदास ने कृष्ण के बाल-जीवन से लेकर किशोरावस्था तक की संपूर्ण क्रीड़ाओं, चेष्टाओं एवं व्यापारों आदि के मनोहारी चित्रण द्वारा 'सूरसागर' के रूप में एक अद्‌भुत काव्य की सृष्टि की है, जिसमें वात्सल्य और विप्रलंभ संबंधी वर्णन सर्वोपरि हैं।

प्रकृति-चित्रण

सूरदास, सूर कुटी, सूर सरोवर, आगरा

सूरदास की कविता के केंद्र में ब्रज प्रदेश की रमणीय प्रकृति अपने पूरे वैभव के साथ उपस्थित है। ब्रज प्रदेश की प्रकृति का मनोहारी रूप और आनंदोल्लासपूर्ण मधुर कलरव सूरदास के प्रत्येक पदों में गुंजायमान है। प्रकृति-नटी के रमणीय झांकी अंकित करते हुए सूरदास उसके षड्‌ऋतुओं में परिवर्तित होने वाले दिव्य सौंदर्य का मनमोहक निरूपण करते हैं। बसंत ऋतु के एक चित्र में कोकिल सदैव शोर मचाती रहती है, मन्मथ सदा चित्त चुराता रहता है, वृक्षों की डालियां विविध प्रकार के पुष्पों से भरी रहती हैं, जिन पर भ्रमर उन्मुक्त होकर विलास करते रहते हैं, और ऐसे में सर्वत्र हर्ष एवं उल्लास छाया रहता है और कोई भी उदास नहीं होता-

'सदा बसंत रहत जहं बास। सदा हर्ष जहं नहीं उदास।।
कोकिल कीर सदा तंह रोर। सदा रूप मन्मथ चित चोर।।
विविध सुमन बन फूले डार। उन्मत मधुकर भ्रमत अपार।।'

कलापक्ष

कलापक्ष काव्य का वाह्य अंग होता है, जिसके अंतर्गत प्रमुखतः काव्य-शैली, भाषा, अलंकार आदि का समावेश होता है। ये तीनों भावों के वाहक हैं, जिनके माध्यम से भावों को संप्रेषित किया जाता है। सूरदास की कविता के कलापक्ष को निम्नांकित रूप में देख सकते हैं-

काव्य-शैली

जीवन की कोमलतम अनुभूतियां गीत-शैली में उत्तम ढंग से व्यक्त हो सकती हैं। इसीलिए सूरदास ने गीत-शैली का आधार ग्रहण किया। कृष्ण का ब्रज रूप समस्त गीति-काव्य की सुंदरतम भावभूमि है। 'सूरसागर' में एक ओर जहां कथा की क्षीण धारा प्रवाहित होती है, वहीं दूसरी ओर वर्णात्मक प्रसंग भी हैं, किंतु इनमें कवि का मन ज्यादा रमा नहीं है। प्रत्येक समर्थ साहित्यकार की अपनी विशिष्ट शैली होती है, जिसमें उसका संपूर्ण व्यक्तित्त्व प्रतिबिंबित होता है। कुछ विद्वानों ने 'सूरसागर' को प्रबंध-मुक्तक काव्य की संज्ञा से विभूषित किया है। **डॉ. सत्येंद्र** इसे 'कीर्तन काव्य' कहते हैं, जबकि **डॉ. ब्रजेश्वर** वर्मा ने विविधता की दृष्टि से 'सूरसागर' के पदों का वर्गीकरण निम्नांकित रूप में किया है-

श्रीमद्भागवत के कथा प्रसंग तथा कथा-पूर्ति हेतु वर्णात्मक अंश,
दृश्य और वर्णन विस्तार,
वर्णात्मक कथानक,
गीतात्मक कथानक,
सामान्य चरित संबंधी गेय पद,
विशिष्ट क्रीड़ा संबंधी गेय पद,
रूप चित्रण और मुरली-वादन संबंधी गेय पद,
प्रभाव-वर्णन संबंधी गेय पद,
भाव-चित्रण संबंधी गेय पद, और
फुटकल गेय पद।

सूरदास के पदों में गीतिकाव्य के सभी प्रधान तत्त्व देखें जाते हैं। सूरदास के पदों की आत्मा संगीत है, जिसकी रचना अनुभूति की सघनता के क्षणों में हुई है। इनमें भाषाओं की वंश वर्तनी है एवं कवि के अंतर्वेग को छंद ने लय की एकरूपता में बांध दिया है। इनमें अभिप्रेत अर्थ भावों तक पहुंचाने का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये सब ही विशेषताएं गीतिकाव्य के अंतर्गत आती हैं। निर्विवादित रूप से 'सूरसागर' गीति-शैली का एक अद्वितीय काव्य-ग्रंथ है।

दृष्टिकूटि-शैली

'सूरसागर' में दृष्टिकूटि-शैली भी देखने को मिलती है। सूरदास की काव्य-कला का एक नमूना वह है, जिसमें शब्द-क्रीड़ा का चमत्कार प्रस्तुत किया गया है। इसमें न तो लोकगीतों की सहजता है और न ही आंतरिक

संगीतात्मकता। दृष्टिकूटि पद-रचना हिन्दी में सूरदास की अपनी निजी कलात्मक विशेषता है। उनमें शब्द-क्रीड़ा एवं चमत्कार की सर्वत्र प्रमुखता है।

भाषा-शैली

सूरदास की रचना परिमाण और गुण दोनों में महान् कवियों के बीच अतुलनीय है। आत्माभिव्यंजना के रूप में इतने विशाल काव्य का सर्जन सूर ही कर सकते थे, क्योंकि उनके स्वात्ममें सम्पूर्ण युग जीवन की आत्मा समाई हुई थी। उनके स्वानुभूतिमूलक गीतिपदों की शैली के कारण प्राय: यह समझ लिया गया है कि वे अपने चारों ओर के सामाजिक जीवन के प्रति पूर्ण रूप में सजग नहीं थे, परन्तु प्रचारित पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर यदि देखा जाय तो स्वीकार किया जाएगा कि सूर के काव्य में युग जीवन की प्रबुद्ध आत्मा का जैसा स्पन्दन मिलता है, वैसा किसी दूसरे कवि में नहीं मिलेगा। यह अवश्य है कि उन्होंने उपदेश अधिक नहीं दिये, सिद्धान्तों का प्रतिपादन पण्डितों की भाषा में नहीं किया, व्यावहारिक अर्थात् सांसारिक जीवन के आदर्शों का प्रचार करने वाले सुधारक का बाना नहीं धारण किया, परन्तु मनुष्य की भावात्मक सत्ता का आदर्शीकृत रूप गढ़ने में उन्होंने जिस व्यवहार बुद्धि का प्रयोग किया है, उससे प्रमाणित होता है कि वे किसी मनीषी से पीछे नहीं थे। उनका प्रभाव सच्चे कान्ता सम्मित उपदेश की भाँति सीधे हृदय पर पड़ता है। वे निरे भक्त नहीं थे, सच्चे कवि थे, ऐसे द्रष्टा कवि थे, जो सौन्दर्य के ही माध्यम से सत्य का अन्वेषण कर उसे मूर्त रूप देने में समर्थ होते हैं। युगजीवन का प्रतिबिम्ब होते हुए उसमें लोकोत्तर सत्य के सौन्दर्य का आभास देने की शक्ति महाकवि में ही होती है, निरे भक्त, उपदेशक और समाज सुधारक में नहीं।

काव्य-रस एवं समीक्षा

सूरदास जी वात्सल्यस के सम्राट माने गए हैं। उन्होंने शृंगार और शान्त रसो का भी बड़ा मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। बालकृष्ण की लीलाओं को उन्होंने अन्त:चक्षुओं से इतने सुन्दर, मोहक, यथार्थ एवं व्यापक रूप में देखा था, जितना कोई आँख वाला भी नहीं देख सकता। वात्सल्य का वर्णन करते हुए वे इतने अधिक भाव-विभोर हो उठते हैं कि संसार का कोई आकर्षण फिर उनके लिए शेष नहीं रह जाता।

सूर ने कृष्ण की बाललीला का जो चित्रण किया है, वह अद्वितीय व अनुपम है। **डॉक्टर हजारी प्रसाद द्विवेदी** जी ने लिखा है – ''संसार के साहित्य की बात कहना तो कठिन है, क्योंकि वह बहुत बड़ा है और उसका एक अंश मात्र हमारा जाना है, परन्तु हमारे जाने हुए साहित्य में इतनी तत्परता, मनोहारिता और सरसता के साथ लिखी हुई बाललीला अलभ्य है। बालकृष्ण की एक-एक चेष्टा के चित्रण में कवि कमाल की होशियारी और सूक्ष्म निरीक्षण का परिचय देता है। न उसे शब्दों की कमी होती है, न अलंकार की, न भावों की, न भाषा की। अपने-आपको पिटाकर, अपना सर्व निछावर करके, जो तन्मयता प्राप्त होती है, वही श्रीकृष्ण की इस बाल-लीला को संसार का अद्वितीय काव्य बनाए हुए है।'

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी इनकी बाललीला-वर्णन की प्रशंसा में लिखा है – ''गोस्वामी तुलसी जी ने गीतावली में बाललीला को इनकी देखा-देखी बहुत विस्तार दिया सही, पर उसमें बाल-सुलभ भावों और चेष्टाओं की वह प्रचुरता नहीं आई, उसमें रूप-वर्णन की ही प्रचुरता रही। बाल-चेष्टा के निम्न उदाहरण देखिए –

मैया कवहिं बढ़ेगी चोटी ?
कितिक बार मोहि दूध पियत भई,
यह अजहूँ है छोटी।

तू जो कहति 'बल' की बेनी
ज्यों ह्वावै है लाँबी मोटी।।

खेलत में को काको गोसैयाँ
जाति-पाँति हमतें कछु नाहिं,
न बसत तुम्हारी छैयाँ।
अति अधिकार जनावत यातें,
अधिक तुम्हारे हैं कछु गैयाँ।

सोभित कर नवनीत लिए।
घुटरुन चलत रेनु तन मंडित,
मुख दधि लेप किए।।

सूर के शान्त रस वर्णनों में एक सच्चे हृदय की तस्वीर अति मार्मिक शब्दों में मिलती है–

कहा करौ बैंकुठहि जाय ?
जहँ नहिं नन्द, जहाँ न जसोदा,
नहिं जहँ गोपी ग्वाल न गाय।
जहँ नहिं जल जमुना को निर्मल
और नहीं कदमन की छाँय।
परमानन्द प्रभु चतुर ग्वालिनी,
ब्रजरज तजि मेरी जाय बलाय।

कुछ पदों के भाव भी बिल्कुल मिलते हैं, जैसे –

अनुखन माधव माधव सुमिरइत सुंदर भेलि मधाई।
ओ निज भाव सुभावहि बिसरल अपने गुन लुबधाई।।
भोरहि सहचरि कातर दिठि हेरि छल छल लोचन पानि।
अनुखन राधा राधा रटइत आधा आधा बानि।।
राधा सयँ जब पनितहि माधव, माधव सयँ जब राधा।
दारुन प्रेम तबहि नहिं टूटत बाढ़त बिरह क बाधा।।
दुहुँ दिसि दारु दहन जइसे दगधइ,आकुल कोट–परान।
ऐसन बल्लभ हेरि सुधामुखि कबि विद्यापति भान।।

इस पद्य का भावार्थ यह है कि प्रतिक्षण कृष्ण का स्मरण करते–करते राधा कृष्णरूप हो जाती हैं और अपने को कृष्ण समझकर राधा क वियोग में 'राधा राधा' रटने लगती हैं। फिर जब होश में आती हैं तब कृष्ण के विरह से संतप्त होकर फिर 'कृष्ण–कृष्ण' करने लगती हैं।

सुनौ स्याम ! यह बात और काउ क्यों समझाय कहै।
दुहुँ दिसि की रति बिरह बिरहिनी कैसे कै जो सहै।।
जब राधे, तब ही मुख 'माधौ माधौ' रटति रहै।
जब माधो ह्मवै जाति, सकल तनु राधा – विरह रहै।।
उभय अग्र दव दारुकीट ज्यों सीतलताहि चहै।
सूरदास अति बिकल बिरहिनी कैसेहु सुख न लहै।।

सूरसागर में जगह जगह दृष्टिकूटवाले पद मिलते हैं। यह भी विद्यापति का अनुकरण है। 'सारंग' शब्द को लेकर सूर ने कई जगह कूट पद कहे हैं। विद्यापति की पदावली में इसी प्रकार का एक कूट देखिए –

सारँग नयन, बयन पुनि सारँग,
सारँग तसु समधाने।
सारँग ऊपर उगल दस सारँग
केलि करथि मधु पाने।।

पच्छिमी हिन्दी बोलने वाले सारे प्रदेशों में गीतों की भाषा ब्रज ही थी। दिल्ली के आसपास भी गीत ब्रजभाषा में ही गाए जाते थे, यह हम खुसरो (संवत् 1340) के गीतों में दिखा आए हैं। कबीर (संवत् 1560) के प्रसंग में कहा जा चुका है कि उनकी 'साखी' की भाषा तो 'सधुक्कड़ी' है, पर पदों की भाषा काव्य में प्रचलित ब्रजभाषा है। यह एक पद तो कबीर और सूर दोनों की रचनाओं के भीतर ज्यों का त्यों मिलता है –

है हरिभजन का परवाँन।
नीच पावै ऊँच पदवी,
बाजते नीसान।
भजन को परताप ऐसो
तिरे जल पापान।
अधम भील, अजाति गनिका
चढ़े जात बिवाँन।।
नवलख तारा चलै मंडल,
चले ससहर भान।
दास धू कौं अटल
पदवी राम को दीवान।।
निगम जामी साखि बोलैं
कथैं संत सुजान।
जन कबीर तेरी सरनि आयौ,
राखि लेहु भगवान।।
(कबीर ग्रंथावली)
है हरि-भजन को परमान।
नीच पावै ऊँच पदवी,
बाजते नीसान।
भजन को परताप ऐसो
जल तरै पाषान।

अजामिल अरु भील गनिका
चढ़े जात विमान।।
चलत तारे सकल, मंडल,
चलत ससि अरु भान।
भक्त ध्रुव की अटल पदवी
राम को दीवान।।
निगम जाको सुजस गावत,
सुनत संत सुजान।
सूर हरि की सरन आयौ,
राखि ले भगवान।।
(सूरसागर)

कबीर की सबसे प्राचीन प्रति में भी यह पद मिलता है, इससे नहीं कहा जा सकता है कि सूर की रचनाओं के भीतर यह कैसे पहुँच गया।

राधाकृष्ण की प्रेमलीला के गीत सूर के पहले से चले आते थे, यह तो कहा ही जा चुका है। बैजू बावरा एक प्रसिद्ध गवैया हुआ, जिसकी ख्याति तानसेन के पहले देश में फैली हुई थी। उसका एक पद देखिए –

मुरली बजाय रिझाय लई मुख मोहन तें।
गोपी रीझि रही रसतानन सों सुधबुध सब बिसराई।
धुनि सुनि मन मोहे, मगन भई देखत हरि आनन।
जीव जंतु पसु पंछी सुर नर मुनि मोहे, हरे सब के प्रानन।
बैजू बनवारी बंसी अधर धरि बृंदाबन चंदबस किए सुनत ही कानन।।

जिस प्रकार रामचरित का गान करने वाले भक्त कवियों में गोस्वामी तुलसीदासजी का स्थान सर्वश्रेष्ठ है, उसी प्रकार कृष्णचरित गाने वाले भक्त कवियों में महात्मा सूरदासजी का। वास्तव में ये हिंदी काव्यगगन के सूर्य और चंद्र हैं। जो तन्मयता इन दोनों भक्तशिरोमणि कवियों की वाणी में पाई जाती है वह अन्य कवियों में कहां! हिन्दी काव्य इन्हीं के प्रभाव से अमर हुआ, इन्हीं की सरसता से उसका स्रोत सूखने न पाया:–

उत्तम पद कवि गंग के,
कविता को बलबीर।
केशव अर्थ गँभीर को,
सुर तीन गुन धीर।।

इसी प्रकार यह दोहा भी बहुत प्रसिद्ध है –

किधौं सूर को सर लग्यो,
किधौं सूर की पीर।
किधौं सूर को पद लग्यो,
बेध्यो सकल सरीर।।

यद्यपि तुलसी के समान सूर का काव्यक्षेत्र इतना व्यापक नहीं कि उसमें जीवन की भिन्न-भिन्न दशाओं का समावेश हो, पर जिस परिमित पुण्यभूमि में उनकी वाणी ने संचरण किया, उसका कोई कोना अछूता न छूटा। शृंगार और वात्सल्य के क्षेत्र में, जहाँ तक इनकी दृष्टि पहुँची वहाँ तक ओर किसी कवि की नहीं।

काहे को आरि करत मेरे मोहन !
यों तुम आँगन लोटी?
जो माँगहु सो देहुँ मनोहर,
य है बात तेरी खोटी।।
सूरदास को ठाकुर ठाढ़ो
हाथ लकुट लिए छोटी।।
सोभित कर नवनीत लिए।
घुटुरुन चलत रेनु – तन – मंडित,
मुख दधि-लेप किए।।
सिखवत चलन जसोदा मैया।
अरबराय कर पानि गहावति,
डगमगाय धरै पैयाँ।।
पाहुनि करि दै तरक मह्यौ।
आरि करै मनमोहन मेरो,
अंचल आनि गह्यो।।
व्याकुल मथत मथनियाँ रीती,
दधि भ्वै ढरकि रह्यो।।

शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का इतना प्रचुर विस्तार और किसी कवि में नहीं। गोकुल में जब तक श्रीकृष्ण रहे तब तक का उनका सारा जीवन ही संयोग पक्ष है।

करि ल्यौ न्यारी,
हरि आपनि गैयाँ।
नहिंन बसात लाल कछु तुमसों
सबै ग्वाल इक ठैयाँ।
धेनु दुहत अति ही रति बाढ़ी।
एक धार दोहनि पहुँचावत,
एक धार जहँ प्यारी ठाढ़ी।।
मोहन कर तें धार चलति पय
मोहनि मुख अति ह छवि बाढ़ी।।

राधा कृष्ण के रूप वर्णन में ही सैकड़ों पद कहे गए हैं जिनमें उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा आदि की प्रचुरता है। आँख पर ही न जाने कितनी उक्तियाँ हैं:–

देखि री ! हरि के चंचल नैन।
खंजन मीन मृगज चपलाई,
नहिं पटतर एक सैन।।
राजिवदल इंदीवर, शतदल,
कमल, कुशेशय जाति।
निसि मुद्रित प्रातहि वै बिगसत, ये बिगसे दिन राति।।
अरुन असित सित झलक पलक प्रति,
को बरनै उपमाय।
मनो सरस्वति गंग जमुन
मिलि आगम कीन्हों आय।।

नेत्रों के प्रति उपालंभ भी कहीं कहीं बड़े मनोहर हैं –

सींचत नैन–नीर के, सजनी ! मूल पतार गई।
बिगसति लता सभाय आपने छाया सघन भई।।
अब कैसे निरुवारौं, सजनी ! सब तन पसरि छई।

सूरसागर का सबसे मर्मस्पर्शी और वाग्वैदग्ध्यपूर्ण अंश भ्रमरगीत है, जिसमें गोपियों की वचनवक्रता अत्यंत मनोहारिणी है। ऐसा सुंदर उपालंभ काव्य और कहीं नहीं मिलता। उद्धव तो अपने निर्गुण ब्रह्मज्ञान और योग कथा द्वारा गोपियों को प्रेम से विरत करना चाहते हैं और गोपियाँ उन्हें कभी पेट भर बनाती हैं, कभी उनसे अपनी विवशता और दीनता का निवेदन करती हैं –

उधो ! तुम अपनी जतन करौ
हित की कहत कुहित की लागै,
किन बेकाज ररौ ?
जाय करौ उपचार आपनो,
हम जो कहति हैं जी की।
कछू कहत कछुवै कहि डारत,
धुन देखियत नहिं नीकी।

इस भ्रमरगीत का महत्त्व एक बात से और बढ़ गया है। भक्तशिरोमणि सूर ने इसमें सगुणोपासना का निरूपण बड़े ही मार्मिक ढंग से, हृदय की अनुभूति के आधार पर तर्कपद्धति पर नहीं – किया है। सगुण–निर्गुण का यह प्रसंग सूर अपनी ओर से लाए हैं। जब उद्धव बहुत सा वाग्विस्तार करके निर्गुण ब्रह्म की उपासना का उपदेश बराबर देते चले जाते हैं, तब गोपियाँ बीच में रोककर इस प्रकार पूछती हैं –

निर्गुन कौन देस को बासी ?
मधुकर हँसि समुझाय,
सौह दै बूझति साँच, न हाँसी।

और कहती हैं कि चारों ओर भासित इस सगुण सत्ता का निषेध करके तू क्यों व्यर्थ उसके अव्यक्त और अनिर्दिष्ट पक्ष को लेकर यों ही बक–बक करता है:–

सुनिहै कथा कौन निर्गुन की,
रचि पचि बात बनावत।
सगुन – सुमेरु प्रगट देखियत,
तुम तृन की ओट दुरावत।।

उस निर्गुण और अव्यक्त का मानव हृदय के साथ भी कोई सम्बन्ध हो सकता है, यह तो बताओ –

रेख न रूप, बरन जाके नहिं ताको हमैं बतावत।
अपनी कहौ, दरस ऐसे को तु कबहूँ हौ पावत ?
मुरली अधर धरत है सो, पुनि गोधन बन बन चारत ?
नैन विसाल, भौंह बंकट करि देख्यो कबहुँ निहारत ?
तन त्रिभंग करि, नटवर वपु धरि, पीतांबर तेहि सोहत ?
सूर श्याम ज्यों देत हमैं सुख त्यौं तुमको सोउ मोहत ?

अन्त में वे यह कहकर बात समाप्त करती हैं कि तुम्हारे निर्गुण से तो हमें कृष्ण के अवगुण में ही अधिक रस जान पड़ता है –

ऊनो कर्म कियो मातुल बधि,
मदिरा मत्त प्रमाद।
सूर श्याम एते अवगुन में
निर्गुन तें अति स्वाद।।

4

भ्रमर गीत

भ्रमरगीत भारतीय काव्य की एक पृथक काव्यपरम्परा है। हिन्दी में सूरदास और जगन्नाथदास रत्नाकर ने भ्रमरगीत की रचना की है।

सूरदासजी का प्रधान एवं महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ सूरसागर है। इसमें प्रथम नौ अध्याय संक्षिप्त है, पर दशम स्कन्ध का बहुत विस्तार हो गया है। इसमें भक्ति की प्रधानता है। इसके दो प्रसंग 'कृष्ण की बाल-लीला' और 'भ्रमरगीत-प्रसंग' अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं। इसके विषय में आचार्य शुक्ल ने कहा है, सूरसागर का सबसे मर्मस्पर्शी और वाग्वैदग्ध्यपूर्ण अंश भ्रमरगीत है। आचार्य शुक्ल ने लगभग 400 पदों को सूरसागर के भ्रमरगीत से छांटकर उनको 'भ्रमरगीत सार' के रूप में संग्रह किया था।

भ्रमरगीत में सूरदास ने उन पदों को समाहित किया है, जिनमें मथुरा से कृष्ण द्वारा उद्धव को ब्रज संदेश लेकर भेजते हैं। उद्धव योग और ब्रह्म के ज्ञाता हैं। उनका प्रेम से दूर-दूर का कोई सम्बन्ध नहीं है। जब गोपियाँ व्याकुल होकर उद्धव से कृष्ण के बारे में बात करती हैं और उनके बारे में जानने को उत्सुक होती हैं तो वे निराकार ब्रह्म और योग की बातें करने लगते हैं तो खीजी हुई गोपियाँ उन्हें 'काले भँवरे' की उपमा देती हैं। इन्हीं लगभग 100 पदों का समूह भ्रमरगीत या 'उद्धव-संदेश' कहलाता है।

भ्रमरगीत में गोपियों की वचनवक्रता अत्यंत मनोहारिणी है। ऐसा सुंदर उपालंभ काव्य और कहीं नहीं मिलता।

ऊधौ मन ना भये दस-बीस
एक हुतो सो गयौ स्याम संग, कौ आराधे ईस?

कृष्ण जब गुरु संदीपन के यहाँ ज्ञानार्जन के लिये गए थे तब उन्हें ब्रज की याद सताती थी। वहाँ उनका एक ही मित्र था उद्धव, वह सदैव रीति-नीति की, निर्गुण ब्रह्म और योग की बातें करता था, तो उन्हें चिन्ता हुई कि यह संसार मात्र विरक्तियुक्त निर्गुण ब्रह्म से तो चलेगा नहीं, इसके लिये विरह और प्रेम की भी आवश्यकता है। और अपने इस मित्र से वे उकताने लगे थे कि यह सदैव कहता है, कौन माता, कौन पिता, कौन सखा, कौन बंधु। वे सोचते इसका सत्य कितना अपूर्ण और भ्रामक है। भला कहाँ यशोदा और नंद जैसे माता-पिता होने का सुख और राधा के साथ बीते पलों का आनंद। और तीनों लोकों में ब्रज के गोप-गोपियों के साथ मिलकर खेलने जैसा सुख कहाँ? ऐसा नहीं है कि उद्धव को ब्रज संदेश लेकर भेजते समय कृष्ण संशय में न थे, वे स्वयं सोच रहे थे यह कैसे संदेश ले जाएगा जो कि प्रेम का मर्म ही नहीं समझता, कोरा ब्रह्मज्ञान झाड़ता है।

तबहि उपंगसुत आई गए।
सखा सखा कछु अंतर नाहिं, भरि भरि अंक लाए।।
अति सुन्दर तन स्याम सरीखो, देखत हरि पछताने।
ऐसे कैं वैसी बुधी होती, ब्रज पठऊं मन आने।।
या आगैं रस कथा प्रकासौं, जोग कथा प्रकटाऊं।
सूर ज्ञान याकौ दृढ़ करिके, जुवतिन्ह पास पठाऊं।।

तभी उपंग के पुत्र उद्धव आ जाते हैं। कृष्ण उन्हें गले लगाते हैं।

दोनों सखाओं में खास अन्तर नहीं। उद्धव का रंग-रूप कृष्ण के समान ही है। पर कृष्ण उन्हें देख कर पछताते हैं कि इस मेरे समान रूपवान युवक के पास काश, प्रेमपूर्ण बुद्धि भी होती। तब कृष्ण मन बनाते हैं कि क्यों न उद्धव को ब्रज संदेश लेकर भेजा जाए, संदेश भी पहुँच जाएगा और इसे प्रेम का पाठ गोपियाँ भली-भाँति पढ़ा देंगी। तब यह जान सकेगा प्रेम का मर्म।

उधर उद्धव सोचते हैं कि वे विरह में जल रही गोपियों को निर्गुण ब्रह्म के प्रेम की शिक्षा दे कर उन्हें इस सांसारिक प्रेम से की पीड़ा मुक्ति से मुक्ति दिला देंगे। कृष्ण मन ही मन मुस्करा कर उन्हें अपना पत्र थमाते हैं कि देखते हैं कि कौन किसे क्या सिखा कर आता है।

उद्धव पत्र गोपियों को दे देते हैं और कहते हैं कि कृष्ण ने कहा है कि–

सुनौ गोपी हरि कौ संदेश।
करि समाधि अंतर गति ध्यावहु, यह उनको उपदेस॥
वै अविगत अविनासी पूरन, सब घट रहे समाई।
तत्त्वज्ञान बिनु मुक्ति नहीं, वेद पुराननि गाई॥
सगुन रूप तजि निरगुन ध्यावहु, इक चित्त एक मन लाई।
वह उपाई करि बिरह तरौ तुम, मिले ब्रह्म तब आई॥
दुसह संदेश सुन माधौ को, गोपि जन बिलखानी।
सूर बिरह की कौन चलावै, बूडतिं मनु बिन पानी॥

हे गोपियों, हरि का संदेश सुनो। उनका यही उपदेस है कि समाधि लगा कर अपने मन में निर्गुण निराकार ब्रह्म का ध्यान करो। यह अज्ञेय, अविनाशी पूर्ण सबके मन में बसा है। वेद पुराण भी यही कहते हैं कि तत्त्वज्ञान के बिना मुक्ति संभव नहीं। इसी उपाय से तुम विरह की पीड़ा से छुटकारा पा सकोगी। अपने कृष्ण के सगुण रूप को छोड उनके ब्रह्म निराकार रूप की अराधना करो। उद्धव के मुख से अपने प्रिय का उपदेश सुन प्रेममार्गी गोपियाँ व्यथित हो जाती हैं। अब विरह की क्या बात वे तो बिन पानी पीड़ा के अथाह सागर डूब गईं।

तभी एक भ्रमर वहाँ आता है तो बस जली–भुनी गोपियों को मौका मिल जाता है और वह उद्धव पर काला भ्रमर कह कर खूब कटाक्ष करती हैं।

रहु रे मधुकर मधु मतवारे।
कौन काज या निरगुन सौं, चिरजीवहू कान्ह हमारे॥
लोटत पीत पराग कीच में, बीच न अंग सम्हारै।
भारम्बार सरक मदिरा की, अपरस रटत उघारे॥
तुम जानत हो वैसी ग्वारिनी, जैसे कुसुम तिहारे।
घरी पहर सबहिनी बिरनावत, जैसे आवत कारे॥
सुंदर बदन, कमल–दल लोचन, जसुमति नंद दुलारे।
तन–मन सूर अरपि रहीं स्यामहि, का पै लेहिं उधारै॥

गोपियाँ भ्रमर के बहाने उद्धव को सुना–सुना कर कहती हैं "हे भंवरे। तुम अपने मधु पीने में व्यस्त रहो, हमें भी मस्त रहने दो। तुम्हारे इस निरगुण से हमारा क्या लेना–देना। हमारे तो सगुण साकार कान्हा चिरंजीवी रहें। तुम स्वयं तो पराग में लोट–लोट कर ऐसे बेसुध हो जाते हो कि अपने शरीर की सुध नहीं रहती और इतना मधुरस पी लेते हो कि सनक कर रस के विरुद्ध ही बातें करने लगते

हो। हम तुम्हारे जैसी नहीं हैं कि तुम्हारी तरह फूल-फूल पर बहकें, हमारा तो एक ही है कान्हा जो सुन्दर मुख वाला, नीलकमल से नयन वाला यशोदा का दुलारा है। हमने तो उन्हीं पर तन-मन वार दिया है। अब किसी निरगुण पर वारने के लिये तन-मन किससे उधार लें?"

उधौ जोग सिखावनि आए।
सृंगी भस्म अथारी मुद्रा, दै ब्रजनाथ पठाए।।
जो पै जोग लिख्यौ गोपिन कौ, कत रस रास खिलाए।
तब ही क्यों न ज्ञान उपदेस्यौ, अधर सुधारस लाए।।
मुरली शब्द सुनत बन गवनिं, सुत पतिगृह बिसराए।
सूरदास संग छांडि स्याम कौ, हमहिं भये पछताए।।

गोपियाँ कहती हैं "हे सखि! आओ, देखो ये श्याम सुन्दर के सखा उद्धव हमें योग सिखाने आए हैं। स्वयं ब्रजनाथ ने इन्हें श्रृंगी, भस्म, अथारी और मुद्रा देकर भेजा है। हमें तो खेद है कि जब श्याम को इन्हें भेजना ही था तो, हमें अद्‌भुत रास का रसमय आनंद क्यों दिया था? जब वे हमें अपने अथरों का रस पिला रहे थे तब ये ज्ञान और योग की बातें कहाँ गई थीं? तब हम श्री कृष्ण की मुरली के स्वरों में सुधबुध खो कर अपने बच्चों और पति के घर को भुला दिया करती थीं। श्याम का साथ छोड़ना हमारे भाग्य में था ही तो हमने उनसे प्रेम ही क्यों किया, अब हम पछताती हैं।"

मधुबनी लोगि को पतियाई।
मुख औरै अंतरगति औरै, पतियाँ लिख पठवत जु बनाई।।
ज्यौं कोयल सुत काग जियावै, भाव भगति भोजन जु खवाई।
कुहुकि कुहुकि आएं बसंत रितु, अंत मिलै अपने कुल जाई।।
ज्यौं मधुकर अम्बुजरस चाख्यौ, बहुरि न बूझे बातें आई।
सूर जहँ लगि स्याम गात हैं, तिनसौं कीजै कहा सगाई।।

कोई गोपी उद्धव पर व्यंग्य करती है। मथुरा के लोगों का कौन विश्वास करे? उनके तो मुख में कुछ और मन में कुछ और है। तभी तो एक ओर हमें स्नेहिल पत्र लिख कर बना रहे हैं, दूसरी ओर उद्धव को जोग के संदेश लेके भेज रहे हैं। जिस तरह से कोयल के बच्चे को कौआ प्रेमभाव से भोजन करा के पालता है और बसंत रितु आने पर जब कोयलें कूकती हैं, तब वह भी अपनी बिरादरी में जा मिलता है और कूकने लगता है। जिस प्रकार भंवरा कमल के

पराग को चखने के बाद उसे पूछता तक नहीं। ये सारे काले शरीर वाले एक से हैं, इनसे सम्बंध बनाने से क्या लाभ?"

निरगुन कौन देस को वासी।
मधुकर कहि समुझाई सौंह दै, बूझतिं सांचि न हांसी।।
को है जनक, कौन है जननि, कौन नारि कौन दासी।
कैसे बरन भेष है कैसो, किहिं रस मैं अभिलाषी।।
पावैगो पुनि कियौ आपनो, जो रे करेगौ गांसी।
सुनत मौन ह्वै रह्यौ बावरो, सूर सबै मति नासी।।

अब गोपियों ने तर्क किया, "हाँ तो उद्धव यह बताओ कि तुम्हारा यह निर्गुण किस देश का रहने वाला है? सच सौगंध देकर पूछते हैं, हंसी की बात नहीं है। इसके माता-पिता, नारी-दासी आखिर कौन हैं? कैसा है इस निरगुण का रंग-रूप और भेष? किस रस में उसकी रुचि है? यदि तुमने हमसे छल किया तो तुम पाप और दंड के भागी होगे।" सूरदास कहते हैं कि गोपियों के इस तर्क के आगे उद्धव की बुद्धि कुंद हो गई। और वे चुप हो गए। लेकिन गोपियों के व्यंग्य खत्म न हुए वे कहती रहीं -

जोग ठगौरी ब्रज न बिकैहे।
मूरि के पातिन के बदलै, कौ मुक्ताहल देहै।।
यह ब्यौपार तुम्हारो उधौ, ऐसे ही धरयौ रेहै।
जिन पें तैं लै आए उधौ, तिनहीं के पेट समैंहै।।
दाख छांडि के कटुक निम्बौरी, कौ अपने मुख देहै।
गुन करि मोहि सूर साँवरे, कौ निरगुन निरवेहै।।

"हें उद्धव ये तुम्हारी जोग की ठगविद्या, यहाँ ब्रज में नहीं बिकने की। भला मूली के पत्तों के बदले माणक मोती तुम्हें कौन देगा? यह तुम्हारा व्यापार ऐसे ही धरा रह जाएगा। जहाँ से ये जोग की विद्या लाए हो उन्हें ही वापस सिखा दो, यह उन्हीं के लिये उचित है। यहाँ तो कोई ऐसा बेवकूफ नहीं कि किशमिश छोड़ कर कड़वी निंबौली खाए! हमने तो कृष्ण पर मोहित होकर प्रेम किया है," अब तुम्हारे इस निरगुण का निर्वाह हमारे बस का नहीं।

काहे को रोकत मारग सूधो।
सुनहु मधुप निरगुन कंटक तै, राजपंथ क्यौं रूंथौ।।
कै तुम सिखि पठए हो कुब्जा, कह्यो स्यामघनहू धौं।
वेद-पुरान सुमृति सब ढूंढ़ों, जुवतिनी जोग कहूँ धौं।।

ताको कहां परैंखों की जे, जाने छाछ न दूधौ।
सूर मूर अक्रूर गयौ लै, ब्याज निवैरत उधौ।।

गोपियां चिढ़ कर पूछती हैं कि कहीं तुम्हें कुब्जा ने तो नहीं भेजा? जो तुम स्नेह का सीधा-सादा रास्ता रोक रहे हो और राजमार्ग को निर्गुण के कांटे से अवरुद्ध कर रहे हो! वेद-पुरान, स्मृति आदि ग्रंथ सब छान मारो, क्या कहीं भी युवतियों के जोग लेने की बात कही गई है? तुम जरूर कुब्जा के भेजे हुए हो। अब उसे क्या कहें, जिसे दूध और छाछ में ही अंतर न पता हो। सूरदास कहते हैं कि मूल तो अक्रूर जी ले गए अब क्या गोपियों से ब्याज लेने उद्धव आए हैं?

अब थक हार कर गोपियाँ व्यंग्य करना बंद कर उद्धव को अपने तन-मन की दशा कहती हैं। उद्धव हतप्रभ हैं, भक्ति के इस अद्‌भुत स्वरूप से। हे उद्धव हमारे मन दस बीस तो हैं नहीं, एक था वह भी श्याम के साथ चला गया। अब किस मन से ईश्वर की अराधना करें? उनके बिना हमारी इंद्रियां शिथिल हैं, शरीर मानो बिना सिर का हो गया है, बस उनके दरशन की क्षीण सी आशा हमें करोड़ों वर्ष जीवित रखेगी। तुम तो कान्हा के सखा हो, योग के पूर्ण ज्ञाता हो। तुम कृष्ण के बिना भी योग के सहारे अपना उद्धार कर लोगे। हमारा तो नंद कुमार कृष्ण के सिवा कोई ईश्वर नहीं है।

गोपी उद्धव संवाद के ऐसे कई कई पद हैं, जो कटाक्षों, विरह दशाओं, राधा के विरह और निर्गुण का परिहास और तर्क-कुतर्क व्यक्त करते हैं। सभी एक से एक उत्तम हैं पर यहाँ सीमा है लेख की।

अंततः गोपियाँ राधा के विरह की दशा बताती हैं, ब्रज के हाल बताती हैं। अंततः उद्धव का निर्गुण गोपियों के प्रेममय सगुण पर हावी हो जाता है और उद्धव कहते हैं -

अब अति चकितवंत मन मेरौ।
आयौ हो निरगुण उपदेसन, भयौ सगुन को चैरौ।।
जो मैं ज्ञान गह्यौ गीत को, तुमहिं न परस्यौं नेरौ।
अति अज्ञान कछु कहत न आवै, दूत भयौ हरि कैरौ।।
निज जन जानि-मानि जतननि तुम, कीन्हो नेह घनेरौ।
सूर मधुप उठि चले मधुपुरी, बोरि जग को बेरौ।।

कृष्ण के प्रति गोपियों के अनन्य प्रेम को देख कर उद्धव भाव विभोर होकर कहते हैं "मेरा मन आश्चर्यचकित है कि मैं आया तो निर्गुण ब्रह्म का उपदेश लेकर था और प्रेममय सगुण का उपासक बन कर जा रहा हूँ। मैं तुम्हें

गीता का उपदेश देता रहा, जो तुम्हें छू तक न गया। अपनी अज्ञानता पर लज्जित हूँ कि किसे उपदेश देता रहा, जो स्वयं लीलामय हैं। अब समझा कि हरि ने मुझे यहाँ मेरी अज्ञानता का अंत करने भेजा था। तुम लोगों ने मुझे जो स्नेह दिया, उसका आभारी हूँ।" सूरदास कहते हैं कि उद्धव अपने योग के बेड़े को गोपियों के प्रेम सागर में डुबो के, स्वयं प्रेममार्ग अपना मथुरा लौट गए।

यह है भ्रमर गीत का स्नेहमय सार।

मुख्य रूप से सूरदासजी के पदों को हम तीन प्रकार से बांट सकते हैं –

1. विनय के पद (भगवद् विषयक रति),
2. बाल लीला के पद (वात्सल्य रस वाले),
3. गोपियों के प्रेम-संबंधी पद (दाम्पत्य रति वाले)।

विनय के पद

श्रीकृष्ण भक्ति में डूबे सूर ने सूरसागर में तुलसीदास की भांति विनय के पद भी लिखे हैं। गीताप्रेस-गोरखपुर द्वारा संपादित 'सूर-विनय-पत्रिका' में 309 ऐसे विनय के पद संग्रहित हैं, जिनमें सूरदासजी के वैराग्य, संसार की अनित्यता, विनय प्रबोध एवं चेतावनी के सुंदर पदों का संग्रह है। विनय के पदों का सिरमौर पद यह है, जिसमें सूरदासजी की कृष्ण-चरित्र में कितनी श्रद्धा-भक्ति है, उसका परिचय मिलता है –

चरन-कमल बंदो हरि-राई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघे, अंधे को सब कुछ दरसाई।
बहिरो सुनै, मूक पुनि बोले, रंक चलै सिर छत्र धराई।
सूरदासजी स्वामी करुणामय बार-बार बंदौं तिहि पाई।
(सूर, विनय-पत्रिका पद-1)

सूरदासजी श्रीकृष्ण की भक्त वत्सलता के बारे में बताते हैं—आप जगत के पिता होने पर भी अपने भक्तों की धृष्टता सह लेते हैं –

वासुदेव की बड़ी बड़ाई।
जगत-पिता, जगदीश, जगत-गुरू
निज भक्तन की सहत ढिठाई।
बिनु दीन्हें ही देत सूर-प्रभु
ऐसे हैं जदुनाथ गुसाई।
(सूर, विनय-पत्रिका, पद 4)

सूरदासजी अपने आराध्य की छवि को बिना पलक गिरते देखते रहना चाहते हैं। मन को नंदनंदन का ध्यान करने को कहते हैं कि हे मन! विषय-रस का पान नहीं करना है, जैसे -

करि मन, नंदनंदन-ध्यान।
सेव चरन सरोज सीतल, तजि विषय-रस पान॥
सूर श्री गोपाल की छवि, दृष्टि भरि-भरि लेहु।
प्रानपति की निरखि शोभा, पलक परन न देहुं॥

(सूर, विनय-पत्रिका, पद 307)

बाल-लीला के पद—कृष्ण जन्म की आनंद बधाई से ही बाल-लीला का प्रारंभ होता है। भागवत कथा के अनुसार बकी (पूतना) उद्धार से यमलार्जुन उद्धार तक में कृष्ण का गोकुल जीवन और वत्सासुर तथा बकासुर उद्धार से प्रलंबासुर उद्धार एवं गोपों का दावानल से रक्षण तक की कथा वृंदावन बिहारी की बाल-लीला में ले सकते हैं।

सूरदासजी ने श्रीकृष्ण की बाल-लीला से संबंधित अनेक पद लिखे हैं। बालकों की अंतःप्रकृति में भी प्रवेश करके बाल्य-भावों की सुंदर-सुंदर स्वाभाविक व्यंजना की है। बाल-चेष्टा के स्वाभाविक मनोहर चित्रों का जितना भंडार सूरसागर में भरा है, उतना और कहीं नहीं। जैसे कृष्ण बाल सहज भाव से जशोदा मैया से पूछते हैं -

मैया कबहुं बढ़ेगी चोटी?
किती बार मोहि दूध पियत भई, यह अजहूं है छोटी।
(भ्रमरगीत-सार, पृ.16)

श्रीकृष्ण की माखन मंडित मूर्ति और रेणु मंडित तन तथा घुटरुन चलने की स्थिति का वर्णन सूर सुंदर ढंग से करते हैं -

शोभित कर नवनीत लिए।
घुटरुअन चलत, रेनु तन मंडित, मुख दधि लेप किये।
(भ्रमरगीत-सार, पृ.16)

गोपियों के प्रेम संबंधी पद

श्रीमदभागवत में दशम स्कंध के अंतर्गत प्रख्यात पांच गीतों की रचना वेद व्यास की अमर उपलब्धियां हैं—1. वेणुगीत 2.गोपीगीत 3. युगलगीत 4. भ्रमरगीत और 5. महिषीगीत। 11 वें स्कंध में छठा गीत भिक्षुगीत भी मिलता है।

भक्ति की दृष्टि से गोपीगीत और उद्धवगोपी के संवाद स्वरूप भ्रमरगीत का अनन्य मूल्य है। सूरदासजी ने भी भागवत की प्रेरणा से भ्रमरगीत प्रसंग को सूरसागर में लिखकर अपनी कृष्ण भक्ति को चरितार्थ किया है। गोपियों के प्रेम संबंधी पद भ्रमरगीत प्रसंग में अधिक हैं। वृंदावन के सुखमय जीवन में गोपियों के प्रेम का उदय होता है। श्रीकृष्ण के सौंदर्य और मनोहर चेष्टाओं को देखकर गोपियां मुग्ध होती हैं और कृष्ण की कौमार्यावस्था की स्वाभाविक चपलतावश उनकी छेड़छाड़ प्रारंभ करती हैं। सूर ने ऐसे प्रेम-व्यापार का स्वाभाविक प्रारंभ भी दिखाया है। सूर के कृष्ण और गोपियां मुक्त और स्वच्छंद तथा उनका जीवन सहज और स्वाभाविक है। कृष्ण बाल्य काल से ही गोपियों के साथ है। सुंदरता, चपलता में वे अद्वितीय थे। अतः गोपियों के प्रेम का क्रमशः विकास दो प्राकृतिक शक्तियों के प्रभाव से होने से बहुत स्वाभाविक प्रतीत होता है। श्रीकृष्ण-राधा का प्रथम मिलन सूरदासजी बाल-सहज निर्दोषता से प्रस्तुत करते हैं -

बूझत श्याम, कौन तू गौरी।
कहां रहति, काकी तू बेटी? देखी नहिं कहुं ब्रज खोरी।
काहे को हम ब्रज तनु आवति, खेलति रहति आपनी पौरी।
सुनत रहति नंद करि झोटा, करत रहत माखन दधि चोरी।
तुमरो कहा चारी लेंहे हम, खेलन चलो संग मिलि जोरी।
सूरदासजी प्रभु रसिक-सिरोमनि बातन भुरई राधिका भोरी

(भ्रमरगीत-सार, पृ.18)

श्रीकृष्ण के मथुरा जाने से समग्र ब्रज-प्रांत का जीवन दुःखमय हो गया, सबसे अधिक दयनीय दशा गोपियों की होती है। सूर ने भ्रमरगीत प्रसंग द्वारा गोपियों की विप्रलंभ- शृंगार की ऐसी दशा का विस्तार से वर्णन किया है। उद्धव-उपदेश से गोपियों की हालत और दुःखमय बनती है। वे उपालंभ द्वारा कृष्ण-उद्धव को खरी-खोटी सुनाकर अपनी कृष्ण-भक्ति सिद्ध करती हैं -

हम तो नंदघोस की बासी।
नाम गोपाल, जाति कुल गोपहि,
गोप-गोपाल दया की।
गिरवरधारी, गोधनचारी, वृंदावन -अभिलाषी।
राजानंद जशोदा रानी, जलधि नदी जमुना-सी।
प्रान हमारे परम मनोहर कमलनयन सुखदासी।
सूरदासजी प्रभु कहों कहां लौ अष्ट महासिधि रासी।

यहां गोकुल का जीवन और श्रीकृष्ण की भक्ति में ही गोपियां अपने जीवन की धन्यता बताती हैं, नहीं कि अष्ट महासिद्धि की। उद्धव की निरर्थक ज्ञान वार्ता की गोपियां हंसी उड़ाकर मूल सेठ (श्रीकृष्ण) के मिलन की मुंहमांगी कीमत देना चाहती हैं। जैसे –

आयो घोष बड़ो व्यापारी
लादि खेप गुन ज्ञान-जोग की ब्रज में आन उतारी।

गोपियां स्त्री-सहज ईर्ष्या से 'कुब्जानाथ' कहकर कृष्ण को उपालंभ देती हैं –

काहे को गोपीनाथ कहावत?
जो पै मधुकर कहत हमारे गोकुल काहे न आवत?
कहन सुनन को हम हैं उधो सूर अनत बिरमावत।
(भ्रमरगीत-सार, पद 45)

यहां 'मधुकर' शब्द में शब्द की तीनों शक्तियां मौजूद हैं। जिसका अभिधा में भौरा, लक्षणा में उद्धव और व्यंजना में कृष्ण अर्थ सूर ने दिया है। गोपियां हरिकथा की प्यासी हैं। उद्धव से विनती करती हैं –

हम को हरि की कथा सुनाव।
अपनी ज्ञानकथा हो उधो! मथुरा ही ले जाव।

उद्धव द्वारा श्याम-चिटठी से जो गोपियों की दशा होती है, उसका सूर ने अद्‌भुत कौशल से वर्णन किया है –

निरखत अंक श्याम सुंदर के,
बार-बार लावति छाती।
प्राननाथ तुम कब लौं मिलोगे सूरदासजी प्रभु बाल संघाती।

'अंक श्याम' में श्लेष प्रयोग हुआ है। एक अर्थ अक्षर काला और दूसरा गोप-कृष्ण अर्थ व्यंजित हुआ है। इस प्रकार सूर के पदों में कृष्ण भक्ति का अनन्य और आकर्षण रूप शृंगार और वात्सल्य रस द्वारा प्रस्तुत हुआ है। वे श्रीकृष्ण की कृपा को ही जीवनाश्रम मानते थे।

सदा रहति बरषा रितु हम पर जब तें स्याम सिधारे,
दृग अंजन न रहत निसि बासर कर कपोल भए कारे।
कंचुकि पट सूखत नहिं कबहूं उर बिच बहत पनारे,
आंसू सलिल भई सब काया पल न जात रिस टारे।
सूरदास प्रभु यहै परेखो गोकुल काहें बिसारे।

यह पद विरह वेदना की अद्‌भुत कृति है। राग मल्हार में आबद्ध इस पद में सूरदास जी ने कृष्ण से विलग हुई गोपियों की विरह वेदना का सजीव चित्रण किया है। अक्रूरजी जब बलराम के साथ श्रीकृष्ण को भी मथुरा ले गए तब गोपियां विरहग्रस्त हो गई। सूरदास के पदों में गोपियों का विरह भाव स्वष्ट झलकता है। इस प्रसिद्ध पद में कृष्ण के वियोग में गोपियों की क्या दशा हुई, उसी का वर्णन सूरदास ने किया है। कृष्ण को संबोधन देते हुए गोपियां कहती हैं कि हे कन्हाई! जब से तुम ब्रज को छोड़कर मथुरा गए हो, तभी से हमारे नयन नित्य ही वर्षा के जल की भांति बरस रहे हैं अर्थात् तुम्हारे वियोग में हम दिन-रात रोती रहती हैं। रोते रहने के कारण इन नेत्रों में काजल भी नहीं रह पाता अर्थात् वह भी आंसुओं के साथ बहकर हमारे कपोलों (गालों) को भी श्यामवर्णी कर देता है। हे श्याम! हमारी कंचुकि (चोली या अंगिया) आंसुओं से इतनी अधिक भीग जाती है कि सूखने का कभी नाम ही नहीं लेती। फलतः वक्ष के मध्य से परनाला-सा बहता रहता है। इन निरंतर बहने वाले आंसुओं के कारण हमारी यह देह जल का स्त्रोत बन गई है, जिसमें से जल सदैव रिसता रहता है। सूरदास के शब्दों में गोपियां कृष्ण से कहती हैं कि हे श्याम! तुम यह तो बताओ कि तुमने गोकुल को क्यों भुला दिया है।

बिथा बिरह जुर भारी

जब ते बिछुरे कुंज बिहारी।
नींद न परै घटै नहिं रजनी बिथा बिरह जुर भारी॥
सरद रैनि नलिनी दल सीतल जगमग रही उजियारी।
रवि किरनन ते लागति ताती इहि सीतल ससि जारी॥
स्त्रवननि सबद सुहाइ न सखि री पिक चातक द्रुम डारी।
उर तें सखी दूर करि हारहिं कंकन धरहिं उतारी॥
सूर स्याम बिनु दुख लागत है कुसुम सेज करि न्यारी।
बिलखि बदन बृषभानु नंदिनी करि बहु जतन जु हारी॥

राग केदार में आबद्ध इस पद के माध्यम से सूरदास जी ने वृषभानुनंदिनी राधा की विरह वेदना का वर्णन किया है। गोकुल से कृष्ण के चले जाने पर राधा बहुत व्याकुल हो जाती हैं। जब से कृष्ण मथुरा गए हैं तभी से राधा को नींद नहीं आती। रात जैसे समाप्त होने का नाम ही नहीं लेती। इतना ही नहीं विरह के कारण ज्वर पीड़ा भी हो गई है। शरद् ऋतु की रात्रि कृष्ण के सान्निध्य काल में जगमगाती अच्छी लगती थी और कमलिनी के पुष्प भी अच्छे लगते थे, वही

सब वियोग काल में सूर्य किरणों के समान दग्ध करने वाली प्रतीत होती हैं। यही स्थिति चंद्रमा की है, वह भी अग्नि समान प्रतीत हो रहा है। राधा अपनी सखी से कहती है कि अरी सखी! अब तो वृक्षों की शाखा पर बैठकर कुहकने वाली कोयल व चातक की स्वर लहरी भी नहीं सुहाती। राधा और कहती है कि सखी मैंने तो गले के हार भी उतारकर अलग रख दिया है क्योंकि प्रियतम के बिना यह सब अच्छा नहीं लगता। सूरदास कहते हैं कि राधा को पुष्पों से सुसज्जित शय्या भी श्याम के बिना काटने को दौड़ती है। इतने पर भी राधा अपने शरीर को अथक प्रयास कर जैसे-तैसे संभाले हुए हैं।

मन न भए दस-बीस

ऊधौ मन न भए दस-बीस।
एक हुतो सो गयो स्याम संग को अवराधै ईसघ
इंद्री सिथिल भई केसव बिनु ज्यों देही बिनु सीस।
आसा लागि रहत तन स्वासा जीवहिं कोटि बरीसघ
तुम तौ सखा स्याम सुंदर के सकल जोग के ईस।
सूर हमारैं नंदनंदन बिनु और नहीं जगदीसघ

कृष्ण के अगाध प्रेम में डूबी विरहाकुल गोपियों की हालत का सांगोपांग वर्णन किया है सूरदास जी ने इस पद के माध्यम से। राग सारंग में आबद्ध यह पद सूरदास की कल्पनाशीलता की अद्‌भुत उड़ान है। भगवान् कृष्ण जब गोकुल से मथुरा चले गए तो यहाँ उनके वियोग में राधा समेत सभी गोपियां अत्यन्त व्याकुल हो गयीं। कृष्ण को जब यह पता चला तो वह अपने सखा उद्धव जी को गोपियों को समझाने के लिये गोकुल भेजा। उद्धव जी को अपने ज्ञान पर बहुत भरोसा था, परंतु ब्रजभूमि में गोपियों की वेदना देखकर वह भी व्यथित हो गये। गोपियां बोलीं कि हे उद्धव! यदि हम तुम्हारी बात मान भी लें तो यह संभव कैसे होगा, क्योंकि मन कोई दस-बीस तो हैं नहीं, एक ही है। वह मन भी हमारे श्यामसुंदर अपने साथ ले गए हैं। हमारी सभी शारीरिक इंद्रियां भी केशव के बिना शिथिल हो गई हैं, वैसे ही जेसे शीशविहीन देह होती है। इस शरीर में जो श्वास चल रहे हैं वह केवल कृष्ण से मिलने की आशा में ही हैं। इस प्रकार हम कृष्ण मिलन की आस में करोड़ों वर्षों तक जी सकती हैं। हे उद्धव! आप तो हमारे श्यामसुंदर के सखा हैं और योग विद्या के सर्वज्ञ भी। सूरदास के शब्दों में गोपियों ने उद्धव को आभास करा दिया कि श्रीकृष्ण ही उनके सर्वस्व हैं। उनके बिना और किसी को वे हृदय में धारण नहीं कर सकतीं।

स्याम हमारे चोर

मधुकर स्याम हमारे चोर।
मन हरि लियो तनक चितवनि में चपल नैन की कोर॥
पकरे हुते हृदय उर अंतर प्रेम प्रीति के जोर।
गए छंडाइ तोरि के बंधन दै गए हंसनि अकोर॥
चौंक परीं जानत निसि बीती दूत मिल्यो इक भौंर।
सूरदास प्रभु सरबस लूटडो नागर नवलकिसोर॥

यह राग सारंग पर आधारित पद है। गोपियां उद्धव से बोलीं, हमारे चित्त को चुराने वाले हमारे श्यामसुंदर ही हैं। उन्होंने टेढ़ी दृष्टि से हमारे चित्त को चुरा लिया है। हमने अपने हृदय में उन्हें भलीभांति जकड़कर रखा था। लेकिन उन्होंने तनिक मुस्कान बिखेरकर सारे बंधन तोड़ डाले और स्वयं को मुक्त करा लिया। इस प्रकार श्यामसुंदर हमारे हृदय से निकल गए, तब हम गोपियां चौंककर जाग गई और रात्रि का सारा समय इन आंखों में ही काट डाला, अर्थात् रातभर जागती रहीं। जब सवेरा हुआ तो आपके (उद्धव) रूप में एक संदेशवाहक से हमारी भेंट हुई। सूरदास कहते हैं कि गोपियों ने उद्धव को स्पष्ट कर दिया कि कृष्ण ने हमारा सर्वस्व छीन लिया।

हरि दर्शन की प्यासी

अंखिया हरि दरसन की प्यासी।
देख्यो चाहतिं कमलनैन कों निसि दिन रहतिं उदासी॥
आए ऊधौ फिरि गए आंगन डारि गए गर फांसी।
केसरि तिलक मोतिनि की माला बृंदावन के बासी॥
काहू के मन की कोउ जानति लोगनि के मन हांसी।
सूरदास प्रभु तुम्हारे दरस को करबत लैहौं कासी॥

श्रीकृष्ण के विरह में व्याकुल गोपियों की मनोदशा का अद्‌भुत चित्रण है इस पद में। राग घनाक्षरी पर आधारित सूरदास जी का यह पद भगवान् से मिलने के लिये भक्त की आतुरता दर्शाता है। गोपियां श्रीकृष्ण के विरह में व्याकुल होकर कहती हैं कि हे हरि! हमारी आंखें तुम्हारे दर्शनों को प्यासी हैं। हे कमल नयन! ये आखें आप ही के दर्शनों की इच्छुक हैं, आपके बिना यह दिन-रात उदास रहती हैं। इस पर भी उद्धव यहां आकर हमें ब्रह्म ज्ञान का उपदेश ग्रहण करने की बात कहकर दुविधा में डाल गए हैं। हे वृंदावन वासी, केसर का तिलक लगाने वाले व मोतियों की माला धारण करने वाले श्रीकृष्ण! किसी के

मन की कौन जाने! लोग तो हंसी उड़ाना ही जानते हैं। सूरदास कहते हैं कि गोपियां श्रीकृष्ण के दर्शन करके ही स्वयं को धन्य करना चाहती हैं। ठीक वैसे ही जैसे काशी, प्रयाग आदि स्थानों में प्राण देने पर लोग समझते हैं कि उनकी मुक्ति हो गई। गोपियां भी कृष्ण दर्शनों में ही स्वयं को मुक्त समझती हैं।

मन माने की बात

ऊधौ मन माने की बात।
दाख छुहारा छांड़ि अमृत फल विषकीरा विष खात॥
ज्यौं चकोर को देइ कपूर कोउ तजि अंगार अघात।
मधुप करत घर कोरि काठ मैं बंधत कमल के पात॥
ज्यौं पतंग हित जानि आपनौ दीपक सौं लपटात।
सूरदास जाकौ मन जासौं सोई ताहि सुहात॥

राग घनाक्षरी पर आधारित सूरदास जी का यह पद बहुत लोकप्रिय है। इस पद का भावार्थ है कि मन पर नियंत्रण मुश्किल है। यह जिस पर भा जाए वही अच्छा लगने लगता है। गोपियां कहती हैं कि हे उद्धव! यह तो मन के मानने की बात है। किसी को कुछ अच्छा लगता है तो किसी को कुछ। अब सर्प को ही लो.. उसे दाख-छुआरा व अमृत (रस से परिपूर्ण) फल अच्छे नहीं लगते। इसीलिए वह विष का सेवन करता है। इसी तरह यदि चकोर को कपूर दिया जाए तो वह उसका परित्याग कर अंगार को ही ग्रहण करता है। भ्रमर काठ को विदीर्ण कर उसमें अपना घर बना लेता है, लेकिन स्वयं कमल दल में बंद हो जाता है। पतंगा दीपक को प्राणपण से चाहने के कारण ही उस पर अपने प्राणों को न्यौछावर कर देता है। सूरदास कहते हैं कि जिसको जो रुचता है वह उसी को पाता है।

सदा बसै उर माहीं

ज्ञान बिना कहुं वै सुख नाहीं।
घट घट ब्यापक दारु अगिनि ज्यों सदा बसै उर माहीं॥
निरगुन छांडि सगुन को दौरति सुधौं कहौं किहिं पाहीं।
तत्त्व भजौ जो निकट न छूटै ज्यों तनु ते परछाहीं॥
तिहि तें कहौ कौन सुख पायो हिहिं अब लौं अवगाही।
सूरदास ऐसें करि लागी ज्यों कृषि कीन्हें पाही॥

सूरदास जी का यह पद राग घनाक्षरी में आबद्ध है। उद्धव गोपियों को ज्ञान मार्ग से भक्ति का उपदेश दे रहे हैं तथा निर्गुण एवं सगुण में भेद बता रहे हैं।

लेकिन श्रीकृष्ण का साक्षात् दर्शन कर चुकी गोपियाँ भला उद्धव से कैसे सहमत होतीं? उद्धव गोपियों से कहते हैं, ज्ञान के बिना कहीं भी सुख नहीं है। पूर्णब्रह्म परमात्मा सबके घट-घट में वैसे ही व्याप्त हैं, जैसे लकडी में अग्नि व्याप्त रहती है, अर्थात् लकड़ी को जब तक जलाया न जाए तब तक उसमें से अग्नि नहीं निकलती। वैसे ही जब तक योग साधन नहीं किया जाता तब तक घट-घट में व्याप्त पूर्णब्रह्म (आत्म तत्त्व) का ज्ञान नहीं होता। तुम निर्गुण को छोड़कर सगुण की ओर दौड़ती हो। निर्गुण के बिना सगुण की प्राप्ति कैसे होगी? तुम उस परम तत्त्व का स्मरण करो जो शरीर की परछाई की भांति है और कभी भी विलग होने वाला नहीं है। गोपियां निर्गुण का विरोध करती हुई कहती हैं कि अब तक तो हमने सगुण का ध्यान कर बहुत सुख पाया लेकिन निर्गुण से हमें क्या सुख मिलेगा-जिसका न आकार है, न स्वरूप-न हम जिसे जानती हैं। सूरदास कहते हैं कि गोपियों ने निर्गुण साधना की उपमा मेंड़ पर खेती करने के समान दी है, अर्थात् गोपियों ने अनुसार निर्गुण साधना वैसी ही है जैसे मेंड़ पर खेती करना। उनकी दृष्टि में निर्गुण साधना या भक्ति व्यर्थ की बात है।

मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं

ऊधौ मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं।
हंस सुता की सुंदर कगरी अरु कुंजनि की छांहीं॥
वै सुरभी वै बच्छ दोहनी खरिक दुहावन जाहीं।
ग्वालबाल मिलि करत कुलाहल नाचत गहि गहि बाहीं॥
यह मथुरा कंचन की नगरी मनि मुक्ता हल जाहीं।
जबहिं सुरति आवति बा सुख की जिय उमगत तन नाहीं॥
अनगन भांति करी बहु लीला जसुदा नंद निबाहीं।
सूरदास प्रभु रहे मौन ह्वै यह कहि कहि पछिताहीं॥

राग सारंग में निबद्ध सूरदास जी का यह पद भाव प्रधान है। श्रीकृष्ण जब ब्रज छोड़कर मथुरा आ गये तो वहाँ गोपियाँ उनके वियोग में बहुत व्याकुल हो गयीं। कृष्ण ने अपने सखा उद्धव को उन्हें समझाने के लिये ब्रज भेजा। ब्रज से लौटकर उद्धव जी ने सारा हाल सुनाया। उद्धव ने जब श्रीकृष्ण को ब्रज की दशा का हाल सुनाया तो श्रीकृष्ण भाव विभोर होकर बोले, हे सखा! ब्रज को मैं भुला नहीं सकता। हंससुता (यमुना) का वह तट, लताओं से आच्छादित मार्गों की वह छाया का सुख मैं कैसे भूल सकता हूं? मैं उन गायों व बछड़ों को भी नहीं भूल सकता और न ही उस गोशाला को, जहाँ मैं गायों का दूध दूहता था। हम सब

ग्वाल बाल एक दूसरे की बांहों में बांहें डालकर कोलाहल मचाते हुए नाचा करते थे। उस सुख को भी मैं कैसे भुला दूं? हे उद्धव! यह मथुरा नगरी यद्यपि स्वर्ण, मणि-मुक्ताओं से बनी हुई है, लेकिन जब भी मुझे ब्रज के उस सुख की याद आती है तब मन भर आता है और मुझे तन की भी सुधि नहीं रहती। मैंने अनेक प्रकार की अनंत लीलाएं कीं, जिन्हें मैया यशोदा ने बहुत ही निभाया है। सूरदास कहते हैं कि श्रीकृष्ण जब उद्धव से ब्रज के उस सुख की बात बतला रहे थे तब बात कहते-कहते बीच में ही मौन हो जाते थे। ऐसा कहकर मन ही मन पश्चाताप भी करने लगते थे।

मुरली सब्द सुनावन

कहा दिन ऐसे ही चलि जैहैं।
सुनि सखि मदन गुपाल आंगन में ग्वालनि संग न ऐहैं॥
कबहूं जात पुलिन जमुना के बहु विहार बिधि खेलत।
सुरति होत सुरभी संग आवत पुहुप गहे कर झेलत॥
मृदु मुसुकानि आनि राख्यो जिय चलत कह्यो है आवन।
सूर सुदिन कबहूं तौ ह्वै है मुरली सब्द सुनावन॥

राग सोरठा पर आधारित इस पद में सूरदास जी ने गोपियों की भावनाओं को व्यक्त किया है। एक सखी दूसरी सखी से पूछती है कि क्या यह दिन ऐसे ही व्यतीत हो जाएंगे? क्या मदन गोपाल अब ग्वालों के संग हमारे आंगन में नहीं आएंगे? क्या अब यमुना के किनारे वह नाना प्रकार की क्रीडाएं नहीं करेंगे? उनकी वह चेष्टाएं बार-बार स्मरण हो आती हैं, जब वह गायों के साथ हाथों में पुष्पों को उछालते हुए आते थे। उनकी वह मधुर मुस्कान अब भी मेरे मानस-पटल पर है। हे सखी! मेरा मन तो कहता है कि श्यामसुंदर एक दिन अवश्य आएंगे। सूरदास कहते हैं कि वह सखियां विचार कर रही हैं कि वह शुभ दिन कब आएगा जब हम श्रीकृष्ण की मुरली का मधुर स्वर सुन पाएंगी।

भाव भगति है जाकें

रास रस लीला गाइ सुनाऊं।
यह जस कहै सुनै मुख स्त्रवननि तिहि चरनन सिर नाऊं॥
कहा कहौं बक्ता स्त्रोता फल इक रसना क्यों गाऊं।
अष्टसिद्धि नवनिधि सुख संपति लघुता करि दरसाऊं॥
हरि जन दरस हरिहिं सम बूझै अंतर निकट हैं ताकें।
सूर धन्य तिहिं के पितु माता भाव भगति है जाकें॥

विहाग राग पर आधारित इस पद में सूरदास कहते हैं कि मेरा मन चाहता है कि मैं भगवान् श्रीकृष्ण की रसीली रास लीलाओं का नित्य ही गान करूं। जो लोग भक्तिभाव से कृष्ण लीलाओं को सुनते हैं तथा अन्य लोगों को भी सुनाते हैं उनके चरणों में मैं शीश झुकाऊं। वक्ता व श्रोता अर्थात् कृष्ण लीलाओं का गान करने व अन्य को सुनाने के फल का मैं और क्या वर्णन करूं। इन सबका फल एक जैसा ही होता है। तब फिर इस जिह्वा से क्यों न कृष्ण लीलाओं का गान किया जाए। जो दीनभाव से इसका गान करता है, उसे अष्टसिद्धि व नव निधियां तथा सभी तरह की सुख-संपत्ति प्राप्त होती है। जिनका मन निर्मल है या जो हरिभक्त हैं, वह सबमें ही हरि स्वरूप देखते हैं। सूरदास कहते हैं कि वे माता-पिता धन्य हैं, जिनकी संतानों में हरिभक्ति का भाव विद्यमान है।

भ्रमरगीत

यहां सूर के भ्रमरगीत से 4 पद लिए गए हैं। कृष्ण ने मथुरा जाने के बाद स्वयं न लौटकर उद्धव के जरिए गोपियों के पास संदेश भेजा था। उन्होंने निर्गुण ब्रह्मा एवं योग का उपदेश देकर गोपियों की विरह वेदना को शांत करने का प्रयास किया। गोपियां ज्ञान मार्ग की बजाए प्रेम मार्ग को पसंद करती थी इस कारण उन्हें उद्धव का शुष्क संदेश पसंद नहीं आया। तभी वहां एक भंवरा आ पहुंचा, यहीं से भ्रमरगीत का प्रारंभ होता है।

गोपियों ने भ्रमर के बहाने उद्धव पर व्यंग्य बाण छोड़े। पहले पद में गोपियों की यह शिकायत वाजिब लगती है कि यदि उद्धव कभी स्नेह के धागे से बंधे होते तो वह विरह की वेदना को अनुभूत अवश्य कर पाते। दूसरे पद में गोपियों की स्वीकारोक्ति कि उनके मन की अभिलाषाएं मन में ही रह गई। कृष्ण के प्रति उनके प्रेम की गहराई को अभिव्यक्त करती हैं। तीसरे पद में उद्धव के योग साधना को कड़वी–ककड़ी जैसा बता कर अपने एकनिष्ठ प्रेम से दृढ़ विश्वास प्रकट करती हैं। चौथे पद में उद्धव को ताना मारती हैं, कि कृष्ण ने अब राजनीति पढ़ ली है। अंत में गोपियों द्वारा उद्धव को राजधर्म–प्रजा का हित याद दिलाया जाना सूरदास की लोकधर्मिता को दर्शाता है।

उधौं, तुम हो अति बड़भागी।
अपरस रहत सनेह तगा तैं, नाहिन मन अनुरागी।
पुरइनि पात रहत जल भीतर, ता रस देह न दागी।
ज्यों जल मांह तेल की गागरी, बूँद न तांको लागी।

प्रीति–नदी में पाऊँ न बोरयो, दृष्टि न रूप परागी।
'सूरदास ' अबला हम भोरी, गुर चांटी ज्यों पागी।।

शब्दार्थ : बड़भागी = भाग्यवान। अपरस = अलिप्त, अछूता। तगा = धागा, बंधन। अनुरागी = प्रेमी। पुरइनि पात = कमल का पत्ता। दागी = दाग,धब्बा, मांह में। प्रीति नदी = प्रेम की नदी।पाऊं = पैर। बोरयो = डुबाया। परागी = मुग्ध होना। भोरी = भोली–भाली। गुर चांटी ज्यों पागी = जिस प्रकार चींटी गुड़ में लिपटी रहती है, उसी प्रकार हम कृष्ण प्रेम में, अनुरक्त हैं, सनी है।

प्रसंग–प्रस्तुत पद कृष्ण भक्त सूरदास रचित " सूरसागर " के भ्रमरगीत से लिया गया है। गोपिया कृष्ण के मित्र उद्धव पर व्यंग्य करती हुई कहती हैं।

व्याख्या– उद्धव हे, तुम बड़े भाग्यशाली हो। तुम कृष्ण के निकट रहकर भी उनके प्रेम–रस में नहीं डूबे (व्यंग्य), तुम कृष्ण प्रेम से सर्वथा अछूते रहे, अलिप्त रहे। तुम कभी कृष्ण–प्रेम के धागे से बंधे ही नहीं। तुम्हारे मन में कृष्ण के प्रति कभी अनुराग उत्पन्न ही नहीं हुआ। तुम तो कमल के पत्ते के समान हो, जो जल के भीतर रहकर भी जल से ऊपर रहता है। इसी प्रकार तुम कृष्ण के साथ रहकर भी उनके प्रेम से अलग रहते हो।

तुम्हारे शरीर पर कृष्ण–प्रेम का कोई दाग तक नहीं है। गोपियां उद्धव पर व्यंग्य करते हुए एक अन्य उदाहरण देती हैं कि, जिस प्रकार जल के मध्य रहते हुए भी तेल की गागर पर पानी की एक बूंद तक नहीं टिकती (तुम पर भी कृष्ण–प्रेम की कोई बूंद नहीं है)। अरे उद्धव, तुमने तो प्रेम की नदी में कभी पैर डुबाया ही नहीं। तुम्हारी दृष्टि उनके रूप पर नहीं पड़ी, अतः तुम उनके रूप पर मुग्ध नहीं हुए। गोपियां अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए कहती हैं कि, हम तो बड़ी भोली भाली हैं और कृष्ण–प्रेम में इस प्रकार अनुरक्त हैं, जैसे चींटी गुड़ में पग जाती है।

गोपियों का व्यंग्य यह है कि वह कभी कृष्ण–प्रेम के धागे से नहीं बंधे अतः वह विरह–वेदना का अनुभव नहीं कर पाते।

विशेष :

1. गोपियों का व्यंग्य स्पष्ट है।
2. गोपियों का कृष्ण के प्रति अटूट–प्रेम अभिव्यक्त हुआ है।
3. प्रीति–नदी में रूपक अलंकार है।
4. 'पुरइन पात' और 'तेल की गागर' के दृष्टांत सटीक बन पड़े हैं।
5. बृजभाषा का प्रयोग।

मन की मन ही मांझ रही
कहिए जाइ कौन पै ऊधो, नाहीं परत कही।
अवधि अधार आस आवन की, तन मन बिथा सही।
अब इन जोग संदेशनि सुनी–सुनी, विरहिनि बिरह दही।
चाहति हूंती गुहारी जितहिं तैं, उत तैं धार बही।
'सूरदास' अब धीर धरहिं, क्यों मरजादा न लही।।

शब्दार्थ–मांझ = मध्य। अवधि = समय। अधार = आधार। आवन = आगमन। बिथा = व्यथा। विरहिनी = वियोग में जीने वाली। विरह दही = वियोग में जल रही हैं। हुंती–गुहारि = रक्षा के लिए पुकार। जीतहिं तै = जहां से। उत = उधर। धीर = धैर्य। मरजादा = मर्यादा, प्रतिष्ठा। न लही = न रही।

प्रसंग–प्रस्तुत पद सूरदास द्वारा रचित 'सूरसागर' के भ्रमरगीत से संकलित है। इस पद में गोपियों की स्वीकारोक्ति है।

व्याख्या–गोपियां स्वीकारती है कि उनके मन की अभिलाषाएं मन में ही दब कर रह गई। वह कृष्ण के समक्ष अपने प्रेम की अभिव्यक्ति नहीं कर पाई। हमसे वह प्रेम की बात कही ही नहीं गई,पता नहीं कोई इसे कैसे कह पाता है। हम उनके आगमन की अवधि को गिन–गिनकर अपने तन–मन की व्यथा को सहती रही हैं। हम तो प्रतीक्षारत थी। तुमने अर्थात् उद्धव ने हमें आकर योग का संदेश सुना दिया। इसे सुन–सुनकर हम गोपियां विरह की आग में जली जा रही हैं।

हम तो पहले ही से ही वियोगिनी थी, तुम्हारे योग के उपदेश ने हमें विरहाग्नि में जलाकर दग्ध कर दिया। जिस और हम पुकार करना चाहती थी, उसी ओर से यह योग की धारा बहने लगी। हम तो तुमसे अपनी व्यथा की गुहार लगाना चाहती थी और तुमने प्रेम–धारा के स्थान पर योग संदेश की धारा बहा दी। बताओ, अब हम कैसे धैर्य धारण करें। अब हमारी कोई मर्यादा शेष नहीं रह गई है।

विशेष

1. गोपियों की विरह–व्यथा की सटीक अभिव्यक्ति हुई है।
2. अनेक स्थानों पर अनुप्रास अलंकार की छटा है।
3. पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार का भी प्रयोग हुआ है–सुनी–सुनी।
4. वियोग श्रृंगार रस का परिपाक है।

5. ब्रज भाषा प्रयुक्त हुई है।

हमारैं हरि हारिल की लकरी।
मन क्रम बचन नंद-नंदन उर, यह दृढ़ करि पकरी।
जागत सोवत स्वप्न दिवस-निसि, कान्ह-कान्ह जक री।
सुनत जोग लागत है ऐसौ, ज्यों करुई ककरी।
सू तो व्याधि हमकौं ले आए, देखी सुनी न करी।
यह तौ 'सूर' तिनहीं लै सौंपौ, जिनके मन चकरी॥

शब्दार्थ–हरि = कृष्ण। हारिल = एक पक्षी, जो अपने पंजों में सदैव एक लकड़ी लिए रहता है उसे छोड़ता नहीं। नंद-नंदन = कृष्ण। उर पकरी = हृदय से पकड़ लिया है। दिवस = दिन। निशि =रात। जक री = रटती रहती है। करुई = कड़वी। सु = वह। व्याधि = बीमारी। करी = भोगा। तिनहिं = उनको। मन चकरी = जिनका मन स्थिर नहीं रहता।

प्रसंग–प्रस्तुत पद सूरदास द्वारा रचित है, इसमें श्री कृष्ण के प्रति गोपियों का प्रेम अभिव्यक्त हुआ है।

व्याख्या–गोपियां उद्धव से कहती है कि हमारे कृष्ण तो हमारे लिए हारिल पक्षी की लकड़ी के समान हैं। जिस प्रकार हारिल पक्षी लकड़ी के आश्रय को नहीं छोड़ता, उसी प्रकार हम कृष्ण का आश्रय नहीं छोड़ सकती। हमने अपने प्रिय कृष्ण को मन-वचन-कर्म अर्थात् पूरी तरह से, पक्की तरह से पकड़ रखा है। हमने तो सोते-जागते, दिन में रात में कृष्ण-कृष्ण की रट लगा रखी है। अर्थात् हम तो पूरी तरह से कृष्णमय हो गई हैं। उन्होंने गोपियों को जो योग का उपदेश दिया था उसके बारे में उनका यह कहना है कि यह योग सुनते ही कड़वी ककड़ी के समान प्रतीत होता है। इसे निगला नहीं जा सकता। हे उद्धव , तुम तो हमारे लिए ऐसी बीमारी ले आए हो जो हमने ना तो कहीं देखी और ना कहीं सुनी। इस योग की आवश्यकता तो उनको है, जिनका मन चकरी के समान घूमता रहता है। अतः इसे उन्हीं को सौंप दो हम तो पहले से ही कृष्ण के प्रति एक निष्ठ प्रेम बनाए हुए हैं, हमारा मन भ्रमित नहीं है।

विशेष

1. गोपियों का कृष्ण के प्रति एकनिष्ठ प्रेम अभिव्यक्त हुआ है।
2. अनेक स्थानों पर अनुप्रास अलंकार की छठा है–हरि हारिल, करुई ककड़ी।

3. कान्हा–कान्हा में पुनरुक्ति अलंकार है।
4. योग में कड़वी ककड़ी की संभावना प्रकट की गई है, अतः यहां उत्प्रेक्षा अलंकार है।
5. ब्रज भाषा का प्रयोग है।

हरि हैं राजनीति पढ़ि आए।
समुझी बात कहत मधुकर के, समाचार सब पाए।
इक अति चतुर हुते पहिलैं ही, अब गुरु ग्रंथ पढ़ाए।
बढ़ी बुद्धि जानी जो उनकी, योग–संदेश पठाए।
उधौ भले लोग आगे के, पर हित डोलत धाए।
अब अपनै मन फेर पाइहैं, चलत जु हुते चुराए।
ते क्यौं अनीति करैं आपुन, जे और अनीति छुड़ाए।
राज धरम तौ यहै 'सूर', जो प्रजा न जाहिं सताए।

शब्दार्थ–मधुकर = भौंरा। हुते = थे। पठाए = भेजे। परहित = दूसरों के कल्याण के लिए। डोलत धाए = घूमते-फिरते थे। फेर = फिर से। पाइहैं =पा लेंगी। अनीति = अन्याय।

प्रसंग–प्रस्तुत पद कृष्ण भक्त कवि सूरदास द्वारा रचित है इस पद में गोपियां उद्धव को ताना मारती हैं कि कृष्ण ने अब राजनीति भी पढ़ ली है।

व्याख्या–गोपियां कहती है-हें उद्धव, अब कृष्ण ने राजनीति भी पढ़ ली है। भंवरे (उद्धव) के बात कहते ही हम सब बात समझ गई। हमें सभी समाचार मिल गए। एक तो कृष्ण पहले से ही बहुत चतुर थे और अब ग्रंथ भी पढ़ लिए। यह उनकी बढ़ी हुई बुद्धि का ही प्रमाण है कि उन्होंने हमारे लिए योग का संदेश भेजा है। आगे के लोग भी बड़े भले थे जो परहित के लिए भागे चले आए। अब हम अपने मन को फिर से पा लेंगे, जिसे किसी और (कृष्ण) ने चुरा लिया था। वह हमारे ऊपर अन्याय क्यों करते हैं, जिन्होंने दूसरों को अन्याय से छुड़ाया है। गोपियां उद्धव को राजधर्म की याद दिलाती हैं। राजधर्म यह कहता है कि प्रजा को सताया नहीं जाना चाहिए।

5

महाकवि सूरदास का सौन्दर्य-बोध

सौन्दर्य सृष्टि का मूल तत्त्व है। सृष्टि के बाहर और भीतर सौन्दर्य ही आनंद का सर्वातिशायी महाभाव है। वस्तुतः यह सम्पूर्ण विश्व उस विराट चेतना की सौन्दर्यमयी अभिव्यक्ति है। बहती हुई नदियों खिले हुए पुष्पों लहराते हुए वनों हिलोरे लेता सागर बर्फ से ढकी ऊँची - ऊँची पहाड़ की चोटियाँ तारिकाओं से आच्छादित आकाश - ये सभी सौन्दर्य की विराट चेतना को उजागर करते हैं। सृष्टि की मूल चेतना आनन्द है और आनंद की प्राप्ति में सौन्दर्य - तत्त्व सहायक सिद्ध होता है। संसार की लगभग सभी वस्तुएँ सौन्दर्यमूलक हैं। मानव की चेतना का विकास वस्तुतः सौन्दर्य चेतना का ही विकास है। महाकवि प्रसाद ने सौन्दर्य को ' चेतना का उज्ज्वल वरदान कहा है।

'सौन्दर्य शब्द का उल्लेख ऋग्वेद में अनेक स्थलों पर ' सूनरी ' सूनरि ' सूनरो इत्यादि के रूप में हुआ है। ' अलंकारशास्त्र और ' संस्कृत काव्य ग्रंथों में सौन्दर्य शब्द के लिए अनेक पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग हुआ है। आचार्य रूद्रट ने सौन्दर्य के लिए ' रमणीय ' शब्द का प्रयोग किया है। कालिदास के ' अभिज्ञानशाकुन्तलम में सौन्दर्य के लिए ' लावण्य शब्द का प्रयोग किया है। ' अमरकोश ' में ' सौन्दर्य शब्द के अनेक पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग मिलता है -

सुदरं रुचिरं चारु सुषमं साधु शोचनम्।
कान्तं मनोरमं रुच्यं मनोज्ञं पंनु मंजुलम॥
अभीष्टेऽभप्सितं हृदयदधितं वल्लभंप्रियम। 1

उपर्युक्त पंक्तियों में सौन्दर्य के लिए सुंदर, रुचिर, चारु, सुषमा, साधु, शोभन, कांत, मनोरम, रुच्य, मनोज्ञ, यंजु, मंजुल आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है।

सौन्दर्य के पारखी महाकवि सूरदास ने सूरसागर के अनेक पदों में सौन्दर्य के लिए अनेक शब्दों का प्रयोग किया है यथा – सुंदर, रूप, छवि, सोभा, सुन्दरताई, चारु, छबीली, सोभाराशि, रूपसरोवर, सुंदरता की रास, सुंदरता कौर सागर, सलोने, मनोहर, छविगुनरूपविधान, ललित आदि।

'वाचस्पत्यम् कोश के अनुसार' सुंदर शब्द की व्युत्पत्ति सु उपसर्गपूर्वक उन्द धातु से' अरन् प्रत्यय जोड़कर मानी है। इस प्रकार धारणर्थ के अनुसार सुंदर शब्द का अर्थ हुआ – सु अर्थात् सुष्ठु या भली प्रकार उन्द अर्थात् आर्द्र करना और अरन कर्त्तृवाचक प्रत्यय। इस प्रकार सौन्दर्य शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ हुआ – अच्छी प्रकार से आर्द्र (गीला) या सरस करने वाला। सौन्दर्य शब्द का निर्वचन इस प्रकार भी हो सकता है –सुन्द राति इति सुंदरम् तस्य भावः सौन्दर्यम्। सुन्द को जो लाता हो वह सुंदर है। सौन्दर्यशास्त्र के सुप्रसिद्ध विद्वान् **डॉ . फतहसिंह** लिखते हैं कि वेद में सौन्दर्यतत्त्व को स्वस्ति की संज्ञा दी गई है। स्वस्ति शब्द स्व और अस्ति के संयोग से बना हे। सु का अर्थ है – सुन्दर और अस्ति सत्ता का द्योतक है। **डॉ . नगेन्द्र** ने भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की भूमिका में सौंदर्य के अनेक पर्यायों की सूची प्रस्तुत की है। यथा – रुचिर, चारु, सुषम, शोभन, कांत, मनोरम, रुच्य, मनोज्ञ, मंजु, मंजुल, ललित, सुष्ठु, काम्य, कमनीय, रमणीय आदि।

भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने सौन्दर्य की अपने – अपने ढंग से व्याख्या की है – महाकवि **माघ** के अनुसार – ' क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदैव रूपं रमणीयतायाः, अर्थात् सौन्दर्य क्षण – क्षण नव्यता को प्राप्त होता रहता है। वह कभी पुरातन नहीं होता, अर्थात् सुंदर वस्तु प्रत्येक अवस्था में सुंदर लगती है।

कविवर **बिहारी** के अनुसार

समै समै सुन्दर सबै रूप कुरूप न कोय।
मन की रुचि जेती तितै तित तेती रुचि होय॥ 6

महाकवि **जयशंकर प्रसाद** के अनुसार –

उज्ज्वल वरदान चेतना का सौन्दर्य जिसे सब कहते हैं,
जिसमें अनन्त अभिलाषाओं के सपने जगते रहते हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार, "सौंदर्य बाहर की कोई वस्तु नहीं है, मन के भीतर की वस्तु है"। **डॉ . हरिद्वारी लाल शर्मा** के अनुसार ' अपनी प्रत्यक्ष अनुभूति स्मृति कल्पना आदि द्वारा आनंद को उत्पन्न करने वाले वस्तु के गुण को सौन्दर्य कहते हैं। **डॉ . रमेश कुंतल मेघ** के अनुसार, "सौन्दर्य एक धारणा है। एक विचार अथवा वस्तु का गुण इसलिए वस्तुनिष्ठ है।" ' **कीट्स** के अनुसार 'Beauty is truth, Truth is beaurty'!

सूर – काव्य की अध्येता **डॉ. मीरा श्रीवास्तव** ने सौंदर्य की अनेक विशेषताओं की ओर संकेत किया है। यथा – ऐक्य, समानुपात, संतुलन, नित्य, नव्यता, सुरुचिपूर्णता, आकर्षणमयता, अतृप्तता, आह्लालादकारिता, सम्पूर्णता, आसक्ति मूलकता, संस्कारमयता आदि। वस्तुतः साहित्य और सौन्दर्य का घनिष्ठ सम्बन्ध है। साहित्य सत्यम् शिवम्-सुन्दर के अन्वेषण के लिए सदैव प्रयत्नशील रहा है। साहित्य का सम्बन्ध अनुभूति से है और सौन्दर्य भी अनुभूतिगम्य है। साहित्य का उद्देश्य मानव-मन में छिपी सौंदर्यवृत्ति को उजागर करना है जो उसके मन-मानस में सोई रहती है। साहित्य में सौन्दर्य को विविध रूपों में प्रस्तुत किया जाता है जैसे – दिव्य-सौंदर्य, मानवीय, सौंदर्य, प्रकृति, सौंदर्य, शिल्प-सौंदर्य आदि। हिन्दी जगत् में **विद्यापति** ने सौंदर्य को अतृप्त भावना माना है तो **तुलसीदास** ने सौंदर्य को भावमूलक वस्तु माना है। सूरदास ने सौन्दर्य के लिए दर्जनों शब्दों को प्रयोग किया है तो **बिहारी** ने सौंदर्य को मन की रुचि का विषय बताता है। **मतिराम** ने सौंदर्य को नित्य नवीन कहा है। साहित्य और सौंदर्य का अत्यंत समीपी सम्बन्ध है। सौंदर्य आधार है और साहित्य आधेय है। जिस प्रकार आधार के बिना आधेय की कल्पना नहीं की जा सकती उसी प्रकार सौन्दर्य के बिना साहित्य की कल्पना संभव नहीं है। साहित्य का मुख्य उद्देश्य सौंदर्य की प्रस्तुति है।

महाकवि सूरदास के सौंदर्य बोध के विविध आयाम

सौंदर्य चेतना के विविध आयाम हैं। यह संसार आकर्षक रंग स्थली है। सौंदर्य – बोध अत्यंत व्यापक शब्द है। यह सम्पूर्ण विश्व अनंत सौन्दर्य से भरा हुआ है। कहीं ऊँचे – ऊँचे पहाड़ हैं, तो कहीं कल – कल निनाद करती हुई

नदियाँ हैं, तो कहीं लहराता हुआ विशाल समुद्र है, तो कहीं विस्तृत रेगिस्तान है। कहीं लहराते खेत हैं, तो कहीं बीहड़ जंगल हैं, कहीं नर – नारी का सौन्दर्य मन को अभिभूत करता है तो कहीं बालकों का भोलापन मन को मुग्ध करता है। कहीं पर कलाओं की कलात्मकता मन को आकृष्ट करती हैं तो कहीं साहित्यिक सौंदर्य मन में नये भाव एवं नये विचार उत्पन्न करता है। इस प्रकार सोन्दर्य बोध का फलक अत्यंत व्यापक और विस्तृत है। महाकवि सूरदास के सौन्दर्य बोध के विविध आयामों को निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत प्रस्तुत किया जा सकता है –

दिव्य सौंदर्य

दिव्य सौंदर्य से तात्पर्य है – उदात्त और अलौकिक सौन्दर्य। दिव्य सौंदर्य मानवीय सौंदर्य से ऊपर की वस्तु होता है। दिव्य सौन्दर्य में उदात्तता का भाव प्रमुख होता है। पाश्चात्य विद्वान् **ब्रेडले** ने सौन्दर्य के पाँच भेद किये हैं – उदात्त, भव्य, सुंदर, मनोरम और ललित। ब्रेडले ने सौंदर्य तत्त्व के अन्तर्गत उदात्तता को विशेष महत्त्व दिया है। उदात्त तत्त्व से दिव्य सौंदर्य की अभिव्यक्ति होती है।

सूर काव्य में श्रीकृष्ण और राधा दिव्य सौंदर्य का प्रतिनिधित्व करते हैं। कृष्ण – अवतार की कथा के माध्यम से कृष्ण के दिव्य सौंदर्य का वर्णन किया गया है। वे सौंदर्य की दिव्य राशि हैं। श्री कृष्ण परम सौंदर्य की मूर्ति हैं, जिसके सम्मुख अप्सराओं, गंधर्वों का सौंदर्य भी विरूप हो जाता है। सूर कृत कृष्णकथा में कृष्ण और राधा का दिव्य रूप में वर्णन किया है। श्रीकृष्ण सुख के धाम तथा पूर्ण काम हैं। वे सुख, रस, रूप, गुण, यौवन शक्ति, यश, आनंद, दया, विद्या, बल, चतुरता और कला की राशि हैं –

श्याम सुख – राशि रस – रासि भारी।
रूप की रासि गुन रासि जीवन – रासि
थकिते भई निरखि नव तरुन – नारी।
सील की रासि जस रासि आनंद रासि
नील नव जलद – छवि बरन कारी।

सूरदास ने राधा के अलौकिक सौंदर्य का वर्णन भी किया है। यथा –

नीलांबर पहिरे तनु यामिनी जनु घन दमकति दामिनी।
ससि मुख तिलकदिये मृगमद कौ खुभी जराइ जरी है।
नासा तिल – प्रसून बेसरि छवि मोतिन माँग भरी है।।

मानवीय सौंदर्य

मानव विधाता की सर्वश्रेष्ठ रचना है। चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करते हुए जीव को पुण्यों के फलस्वरूप मानव – योनि प्राप्त होती है। सूरदास ने अपने काव्य में कृष्ण को एक शृंगारी पुरुष के रूप में प्रस्तुत किया है। सूरदास ने कृष्ण के बाल और किशोर रूप का वर्णन किया है। उन्होंने कृष्ण के बाह्य रूप का सहज स्वभाव, वेशभूषा, बालसुलभ चेष्टाओं का स्वाभाविक चित्रण किया है। कृष्ण बड़े हुए घुटनों के बल चलने लगे। साधारण बालकों के समान उनका धूल – घुसरित होना कितना मनमोहक है –

सोभित कर नवनीत लिए।
घुटरनि चलत रेणु तन मंडित मुख दधि लेप किए।
चारु कपोल लोल लोचन गोरोचन – तिलक दिए।।

राधा नित्य नवीना है। समस्त सौंदर्य – उपादानों को एकत्र कर विधाता ने स्वयं इस मदनमयी मूर्ति को रचा है –

आज सखी इक बाम नई सी।
ठाढ़ी हुति अंगना द्वारे विधि विरचि किंधों मदन मई सी।

कहा जाता है कि यौवन का पूर्ण उन्मेष किशोर अवस्था में ही होता है। सूरदास ने कृष्ण के साथ – साथ राधिका की किशोरावस्था का भी वर्णन किया है –

नवल किशोर नवल नागरिया।
आज वन राजत जुगल किशोर।।

श्रीकृष्ण की लीला का वर्णन करते हुए सूर ने कृष्ण की त्रिभंगी मुद्रा, मुरली वादन, अलंकृत शोभा, लीला चातुर्य आदि का विस्तार से वर्णन किया है।

नारी–सौंदर्य

नारी सौन्दर्य की प्रतिमा होती है। संसार का समस्त सौन्दर्य नारी सौंदर्य में समाया हुआ है। नारी बाहर और भीतर – दोनों दृष्टियों से अपूर्व है। वह बाहर से जितनी आकर्षक है, भीतर उतनी ही भावमयी और आनंदमयी है। सूरदास ने नारी के दो रूपों का वर्णन किया है – बाह्य सौंदर्य व आंतरिक सौंदर्य। सूर ने नारी के बाह्य सौंदर्य के निरूपण के अंतर्गत अंग –प्रत्यंग, वेशभूषा, आभूषण, अनुलेपन आदि का वर्णन किया है। अंग वर्णन में नारी की स्निग्धता गठन

सुडौलता, मृदुलता, सुकुमारता, पुष्टता तथा आयु, वर्ग, कद, स्वास्थ्य आदि का वर्णन किया गया है।

प्रकृति सौंदर्य

मानव और प्रकृति का चिर सम्बन्ध है। प्रकृति ने मानव को अपने सौन्दर्य से आकृष्ट किया है। वस्तुतः मानव ने प्रकृति की गोद में खेलते हुए सौंदर्य का अहसास किया है। प्रकृति सौंदर्य की अधिष्ठात्री है। **सुरेन्द्र वारलिंगे** के अनुसार प्रकृति सौंदर्य की सर्जना का मूल स्रोत है। सूरदास ने काव्य में प्रकृति के अनेक उपादानों का प्रयोग किया है। यथा – घन, विद्युत, दादुर, बक, मयूर, चातक, पिक, द्रुम – बेली, पछी, तृन, चन्द्र, कुमुदिनी, रवि आदि। सूरदास ने अपनी रचनाओं में प्रकृति का विस्तृत वर्णन किया हैं। कतिपय बिंदु द्रष्टव्य हैं –

(1) बिन गोपाल बैरिन भई कुंजै।

(2) देखियत कालिंदी अति कारी।

(3) किंधो घन गरजत नहिं उन देसनि।

(4) बरु ए बदरौ बरषन आए।

(5) कोउ माई ! बरजै या चंदहि।।

कविवर सूरदास ने प्रकृति का उद्दीपन रूप में भी वर्णन किया है। यथा–

बिनु गुपाल बैरनि भई कुंजै।
तब ये लता लगतिं तन सीतल अब भई विषम ज्वाल की पुंजै।
वृथा बहति जुमना खग बोलत वृथा कमल – फूलनि अली गुंजै।
पवन पान घनसार सजीवन दधि – सुत किरन भानु भई भुंजै।

कलागत सौन्दर्य

कला को मानव – संस्कृति की उपज माना जाता है। मानव ने अपने श्रेष्ठ संस्कारों के रूप में जो कुछ सौन्दर्य – बोध प्राप्त किया है उसे कला कहा जाता है। कला मानव की ऊर्ध्वमुखी चेतना का परिणाम है। कला को दो भागों में बांटा गया है – उपयोगी कला और ललित कला। कलागत सौन्दर्य को कवियों ने वास्तुकला, चित्रकला, संगीत कला और वस्त्रभूषण कला आदि के माध्यम से प्रस्तुत किया है। वास्तु कला के अन्तर्गत महल, भवन आदि के कलात्मक वैभव को प्रस्तुत करके कविगण सौन्दर्य की अभिव्यंजना करते हैं। चित्रकला को रंग – रेखाओं और शब्द चित्रों के माध्यम से व्यक्त किया जाता है। महाकवि सूरदास

ने शब्दों के माध्यम से अनेक सौंदर्यमय चित्रों की सृष्टि की है। सूरदास ने राग – रागिनी, वाद्य यंत्रों, नृत्यकला आदि का विस्तृत विवेचन किया है। कवि ने समाज में प्रयुक्त होने वाले वस्त्राभूषणों के सौन्दर्य का भी वर्णन किया है।

भाव–सौंदर्य

सुंदर – असुंदर के प्रश्न के साथ भाव–सौन्दर्य का प्रसंग भी जुड़ा है। रूप –कुरूप, सत्य–असत्य, अच्छा–बुरा आदि परिस्थितियों का निरूपण भाव के आधार पर ही होता है। **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** ने काव्य में भावों की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए कहा है – 'कविता केवल वस्तुओं के ही रूप – रंग के सौन्दर्य की छटा ही नहीं दिखाती प्रत्युत् कर्म और मनोवृत्ति के सौन्दर्य के भी अत्यंत मार्मिक दृश्य सामने रखती है। वह जिस प्रकार विकसित कमल रमणी के मुख – मंडल आदि का सौन्दर्य मन में लाती है, उसी प्रकार उदारता वीरता त्याग दया प्रेमोत्कर्ष इत्यादि कर्मों तथा मनोवृत्तियों का सौन्दर्य भी मन में जगाती है।'

महाकवि सूर ने अपने काव्य में प्रेम – साधना को ही एकमात्र लक्ष्य माना है। उनकी प्रेम साधना का आधार सौन्दर्य है और सिद्धि आनंद है। भ्रमरगीत प्रसंग में गोपियों के प्रेम द्वारा सूर ने प्रेम – साधना के स्वरूप को स्पष्ट किया है। यथा–

प्रेम प्रेम ते होइ प्रेम तें पारहि जाइयै।
प्रेम बंध्यों संसारप्रेमपरमारथ लहियै।
साँचों निहचौ प्रेम को जीवन्मुक्ति रसाल।
एक निहचौ प्रेम को जनै मिलै गोपाल।।

वस्तुतः प्रेम का आधार सौंदर्य है जो सभी को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। वस्तुतः कल्पना, भावना और आनंद में सौन्दर्य चेतना प्रस्फुटित होती है। पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार भाव का सौन्दर्य उसके रूप संमूर्तन में है। विद्वानों ने भावों की तीन कोटियों में विभाजित किया है – कोमल, वेदनामय और उग्र। कोमल भाव सुखात्मक होते हैं, वेदनामय भाव दु:खात्मक होते हैं। उग्र भाव मन में तीव्र कंपन उत्पन्न करते हैं। कोमल भावनाएँ अपनी कृति के कारण सौंदर्यमूलक हैं। वेदना और उग्र भावनाओं में सौंदर्य की अनुभूति कवि की दृष्टि और भावगत मूल व्यवस्था पर निर्भर करती है।

विद्वानों ने रूप भाव और चेष्टा व्यापार को सौंदर्य का प्राथमिक धर्म माना है। वास्तव में ये मनोभाव मानवीय और नैसर्गिक होते हैं। बाल्यावस्था के भावों

में सहजता और सरलता होती है। किशोर अवस्था के भावों में छेड़छाड़, हास – परिहास व्यंग्य–विनोद आदि की प्रधानता होती है। ये सभी सुखात्मक भाव कहलाते हैं।

श्रृंगार के दो पक्ष होते हैं – संयोग और वियोग। संयोग सम्बन्धी भाव सुखात्मक भाव होते हैं – जबकि वियोगावस्था के भाव दुःखात्मक होते हैं। ' सूरसागर में संयोग की स्थिति में प्रेम और सौन्दर्य का सागर उमड़ता है तो वियोग की स्थिति में वेदना की पराकाष्ठा देखी जा सकती है। सूरदास ने अपने भ्रमरगीत में गोपियों की विरह – दशा का वर्णन निम्न पंक्तियों में किया है –

निसिदिन बरसत नैन हमारे।
सदा रहत पावस रितु हमपै जबतें स्याम सिधारे।।

गोपियों की विरह दशा में एकनिष्ठता, अनन्यता, तीव्रता, गंभीरता आदि भावों की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। सौंदर्य का क्षेत्र भावों की क्रीड़ाभूमि है। भावों की व्यंजना ध्वनन व अभिव्यक्ति ही कविता और कला का व्यक्तित्त्व है। कविता और कला दोनों ही सौन्दर्य की प्रस्तोता होती हैं। वैसे भावों की कोई सीमा नहीं। देशकाल की अभिरुचि के अनुसार सौंदर्य के मानदंडों में ईषत् परिवर्तन होता रहता है। यों तो भावों का संसार अद्‌भत और अनोखा है लेकिन सौन्दर्य के संदर्भ में श्रृंगार, प्रेम, भक्ति भाव और वात्सल्य भाव का विशेष महत्त्व है। सूरदास ने उक्त भावों की प्रस्तुति अपने काव्य में की है।

भावों के अन्तर्गत प्रेम तत्त्व का विशेष महत्त्व है। डॉ . नगेन्द्र ने इसी राग तत्त्व को बताते हुए कहा है कि रागतत्त्व सौंदर्य चेतना का योजक तत्त्व है। प्रेम का मूलाधार लौकिक प्रेम ही है। लौकिक प्रेम वासना नहीं है, बल्कि हृदय की एक महान् ललक है। निश्च्छलता, नैसर्गिकता, कष्ट, सहिष्णुता, सौंदर्यप्रियता, हर्ष–उल्लासमयता, बिरहाकुलता, परानुरक्ति, वात्सल्य भाव आदि प्रेम और सौंदर्य के विशिष्ट तत्त्व है। प्रेम के संदर्भ में सौंदर्यप्रियता का विशेष महत्त्व है क्योंकि प्रेमी–प्रेमिका सच्चे प्रेम की डोर में बंधे हुए होते हैं।

शिल्प सौन्दर्य

सौंदर्य एवं शिल्प का नितांत अनिवार्य सम्बन्ध है। इन दोनों के बिना काव्य की कल्पना नहीं की जा सकती। यदि सौंदर्य काव्य की आभ्यांतरिक चेतना है तो शिल्प उस चेतना को चित्रित करने वाला बाह्य उपादान है। यदि सौन्दर्य आत्मा है तो शिल्प शरीर है। शिल्प वस्तुतः सौन्दर्य का प्रस्तोता एवं उसको विशेष गरिमा

प्रदान करने वाला तत्त्व है। शिल्प शब्द शील धातु में प्रत्यय जोड़ने से बना है। शील का अर्थ है – ध्यान करना या अभ्यास करना। प्रत्यय का अर्थ है पीने वाला। अतः शिल्प का अर्थ हुआ – ध्यान या अभ्यास को पीने वाला अर्थात् ध्यान या अभ्यास को संपन्न करने वाला। वृहत् हिन्दी कोश के अनुसार 'शिल्प का अर्थ है वस्तु को रचने का ढंग या तरीका' कारीगरी हस्तकर्म रूप। **डॉ . कैलाश वाजपेयी** के अनुसार ' "काव्य कृति के निर्माण में जिन उपादानों द्वारा काव्य का ढांचा तैयार किया जाता है, वे सब काव्य – शिल्प कहलाते हैं।" वस्तुतः कविता को मूर्त्त रूप प्रदान करके उसे आकर्षक एवं सुंदर बनाने वाले सहयोगी तत्त्वों को समग्र रूप को काव्य शिल्प कहते हैं। भाषा, अलंकार, शब्द, शक्ति, काव्य, गुण, बिम्ब, प्रतीक, छंद आदि काव्यशिल्प के उपादान कहलाते हैं।

भाषा

भाषा की व्युत्पत्ति भाष् धातु से हुई है, जिसका अर्थ है – व्यक्त वाणी। **सुमित्रानंदन पंत** ने भाषा को नादमय चित्र कहा है तो पाश्चात्य विचारक डॉ. जॉनसन ने भाषा को विचारों का परिधान कहा है। भावानुकूलता, चित्रमयता, प्रतीकात्मकता, सूक्तिमयता आदि भाषा की विशेषताएँ हैं। वस्तुतः भाषा काव्य का शरीर है, जिसके अभाव में काव्य की कल्पना नहीं की जा सकती। महाकवि सूरदास ने ब्रजभाषा को अपनाकर जनमानस को रससिक्त किया है। उन्होंने अपनी प्रतिभा एवं कला के द्वारा उसे सरस, संगीतमय, सुमधुर और संपन्न बनाने का सार्थक प्रयास किया है। सूरदास की भाषा में पालि अपभ्रंश के अतिरिक्त गुजराती, राजस्थानी, पंजाबी, खड़ी बोली, हरियाणवी, अवधी, कन्नोजी, बुंदेलखंडी, अरबी – फारसी शब्दों का सुंदर प्रयोग हुआ है। वस्तुतः सूरदास का शब्द भंडार बहुत व्यापक है, जिसके माध्यम से कवि ने काव्य – लालित्य को उजागर करने का महत्त्वपूर्ण प्रयास किया है। उन्होंने अपनी भाषा में तत्सम, तद्भव, देशज अरबी–फारसी शब्दों का बेहतरीन प्रयोग किया है। कवि ने अनेक पदों में ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग किया है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

गहरात झहरात दावानल आयौ
झपटि झपटति लपट फूल–फल चट–चटकि
फाटत लटलटकि द्रुम द्रुमनायौ।

अति अगिन – झार मंझार घुंघारि करि
उचटि अंगार झंझार छायौ।
बरत बन पात महरात झहरात अररात तरु महा धरनी गिराओ।

मुहावरे-लोकोक्ति सौष्ठव

सूरदास ने भाषा को सशक्त प्रभावोत्पादक एवं प्रौढ़ बनाने के लिए मुहावरे एवं लोकोक्तियों का सुष्ठु प्रयोग किया है। 'चाम के दाम चलावै' 'सहद लाइ कै चाटों' 'लीक खींचकर कह्यो' आदि मुहावरों को प्रयोग से काव्य – लालित्य में श्रीवृद्धि हुई है। 'अपने स्वारथ के सब कोऊ' 'काकी भूख गई मन लाडू' मूरी के पातन के बदलै को मुक्ताहल दैहे आदि लोकोक्तियों का सटीक प्रयोग हुआ है।

शब्द शक्ति सौष्ठव– शब्द की बोधक शक्ति को शब्द – शक्ति कहा गया है। भारतीय काव्यशास्त्र में शब्द शक्ति के तीन भेद किये गए हैं – अभिधा, लक्षणा और व्यंजना। जब काव्य में मुख्यार्थ के बाधिक होने पर रूढ़ि या प्रयोजन से अन्य अर्थ का बोध होता है, उसे लक्षणा शब्दशक्ति कहते हैं। कवि ने लक्षणा शब्दशक्ति का प्रयोग क्रियापद विशेषण और क्रिया विशेषण के रूप में किया है। यथा –

सुत मुख देखि जसोदा फूली 'पिय बिनु नागनि कारी रात।'

अलंकार सौष्ठव

अलंकार शब्द अलम् और कार दो शब्दों के मेल से बना है। ' अलम् का अर्थ है – भूषण और ' कार का अर्थ है – कर्त्ता अर्थात् भूषणकर्त्ता अर्थात् किसी वस्तु को भूषित करने वाले तत्त्व को अलंकार कहते हैं। **आचार्य दंडी** ने काव्य के शोभा विधायक धर्म को अलंकार कहा है – 'काव्यशोभा करान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते।'

कविवर सूरदास ने अनुप्रास, यमक, श्लेष, वक्रोक्ति, उपमा, रूपकउत्प्रेक्षा, प्रतीप, व्यतिरेक, विभावना, संदेह, अपह्नुति, विरोधाभास, उल्लेख, स्वभावोक्ति, अतिशयोक्ति अर्थान्तरन्यास आदि अलंकारों का सुष्ठु प्रयोग किया है। उपमा का एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

हरि – दरसन की साध मुई।
उड़ियै उड़ी फिरति नैनन संग पर फूटै ज्यौ आक – रुई। 27

उक्त पंक्तियों में ' हरि दरसन की साध उपमेय है। ' आक – रुईउपमान है ' उड़ि फिरति साधारण धर्म है। ' ज्यौं वाचक शब्द है। ' हमारे हरि हारिल की लकरी आदि पंक्तियाँ उपमामूलक हैं।

बिम्ब – सौष्ठव

' बिम्ब को काव्यशास्त्रियों ने मानसचित्र कहा है। डॉ. नगेन्द्र के मतानुसार ' कल्पना की सहायता से शब्दार्थ द्वारा निर्मित ऐसे मानसचित्र को बिम्ब कहते हैं – जिसमें भाव तत्त्व का सम्मिश्रण हो।' महाकवि सूरदास ने चाक्षुष, नाद, स्पृश्य, गंध, रस्य, गत्यात्मक, मिथकीय भाव आदि बिम्बों का सटीक प्रयोग किया है। चाक्षुष बिम्ब का एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

सोभित कर नवनीत लिए।
घुटुरुनि चलत रेनु – तन – मंडित मुख दधि लेप किए। 29

प्रतीक सौष्ठव

प्रतीक शब्द अंग्रेजी के 'Symbol ' का पर्याय है, जिसका अर्थ है – किसी अमूर्त और अगोचर वस्तु की तुलना किसी अन्य मूर्त या अगोचर वस्तु से की जाए। जैसे कबीर ने ' मन को सिंह' जीवात्मा को 'हंस' माया को 'ठगिनी' आदि प्रतीकों का प्रयोग किया है।

डॉ . वी . लक्ष्मय्या शेट्टी ने सूरदास द्वारा प्रतीकों को छः वर्गों में विभक्त किया है–अवतार प्रतीक, लीला प्रतीक, लीला परिकर प्रतीक, सांस्कृतिक प्रतीक, दार्शनिक प्रतीक, काव्य–प्रतीक। सूरदास ने, जीवको, मृग, बैल, चकई, मृगी, सुआ आदि कहा है। उन्होंने माया को नारी, मोहिनी, कामिनी, साँपनी, आदि कहा है।

काव्य–गुण सौष्ठव

आचार्य वामन के अनुसार काव्य शोभायाकर्त्तारो धर्मा गुणाः, अर्थात् काव्य की शोभा करने वाले धर्म को गुण कहा है। भारतीय काव्यशास्त्र में तीन गुणों की अधिक चर्चा हुई है–प्रसाद, ओज और माधुर्य। ओज गुण का एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

झपटि झपटत लपटफूल – फल चट – चटिक।
फटत लटलटकि द्रुम द्रुम नवायौ।

अति अगिनि – झार भंमार धुंघार करि।
उघरि अंगार झंझार धायो।

छंद सौष्ठव

छंद शब्द छद् धातु में असन्प्रत्यय लगने से बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ है – बँधना। छंद की परिभाषा देते हुए डॉ. ओमप्रकाश शास्त्री कहते हैं, "किसी रचना के पद में मात्राओं तथा वर्णों की नियत संख्या, क्रम संख्या एवं यति के विशेष विधान पर आधारित नियमों को छंद कहते हैं। सूरदास ने मुख्य रूप से मात्रिक और वार्णिक छंदों का प्रयोग किया है। सूरदास ने शशिवंदना माली प्रणयछंद, रजनीमधुरजनी, जल तरंग, वदन, सवैया, प्रतिफल, सूरघनाक्षरी, अखंड आदि छंदों का सुष्ठु प्रयोग किया है।" शशिवंदना छंद का प्रयोग द्रष्टव्य है। इसके प्रत्येक चरण में 10 मात्राएँ होती हैं। यथा –

जल थल पवन थक्यौ खग मृग तरु बिथक्यौ।
देखत मदन जक्यौ चरननि सरन तक्यौ।

शैली सौष्ठव– शैली का शाब्दिक अर्थ है – काव्य – प्रस्तुति की रीति या ढंग। **आचार्य वामन** ने रीति को विशिष्ट पद रचना कहा है। सूरदास ने अपने काव्य की प्रस्तुति में अनेक शैलियों का प्रयोग किया है, जिनमें प्रमुख हैं – दृष्टिकूट पद शैली, वर्णनात्मक शैली, गेयपद शैली।

6

भक्ति काल

हिन्दी साहित्य में भक्ति काल अपना एक अहम और महत्वपूर्ण स्थान रखता है। आदिकाल के बाद आये इस युग को पूर्व मध्यकाल भी कहा जाता है जिसकी समयावधि संवत् 1325 ई. से संवत् 1650 ई. तक की मानी जाती है। यह हिंदी साहित्य (साहित्यि दो प्रकार के हैं- धार्मिक साहित्य और लौकिक साहित्य) का श्रेष्ठ युग है। जिसको जॉर्ज ग्रियर्सन ने स्वर्णकाल, **श्यामसुन्दर दास** ने स्वर्णयुग, **आचार्य राम चंद्र शुक्ल** ने भक्ति काल एवं **हजारी प्रसाद द्विवेदी** ने लोक जागरण कहा। सम्पूर्ण साहित्य के श्रेष्ठ कवि और उत्तम रचनाएं इसी युग में प्राप्त होती हैं।

दक्षिण में आलवार बंधु नाम से कई प्रख्यात भक्त हुए हैं। इनमें से कई तथाकथित नीची जातियों के भी थे। वे बहुत पढे-लिखे नहीं थे, परंतु अनुभवी थे। आलवारों के पश्चात दक्षिण में आचार्यों की एक परंपरा चली जिसमें रामानुजाचार्य प्रमुख थे।

रामानुजाचार्य की परंपरा में रामानंद हुए। उनका व्यक्तित्त्व असाधारण था। वे उस समय के सबसे बड़े आचार्य थे। उन्होंने भक्ति के क्षेत्र में ऊंच-नीच का भेद तोड़ दिया। सभी जातियों के अधिकारी व्यक्तियों को आपने शिष्य बनाया। उस समय का सूत्र हो गया:

जाति-पांति पूछे नहिं कोई।
हरि को भजै सो हरि का होई॥

रामानंद ने विष्णु के अवतार राम की उपासना पर बल दिया। रामानंद ने और उनकी शिष्य-मंडली ने दक्षिण की भक्तिगंगा का उत्तर में प्रवाह किया। समस्त उत्तर-भारत इस पुण्य-प्रवाह में बहने लगा। भारत भर में उस समय पहुंचे हुए संत और महात्मा भक्तों का आविर्भाव हुआ। महाप्रभु वल्लभाचार्य ने पुष्टि-मार्ग की स्थापना की और विष्णु के कृष्णावतार की उपासना करने का प्रचार किया। उनके द्वारा जिस लीला-गान का उपदेश हुआ उसने देशभर को प्रभावित किया। अष्टछाप के सुप्रसिद्ध कवियों ने उनके उपदेशों को मधुर कविता में प्रतिबिंबित किया। इसके उपरांत माध्व तथा निंबार्क संप्रदायों का भी जन-समाज पर प्रभाव पड़ा है। साधना-क्षेत्र में दो अन्य संप्रदाय भी उस समय विद्यमान थे। नाथों के योग-मार्ग से प्रभावित संत संप्रदाय चला जिसमें प्रमुख व्यक्तित्त्व संत कबीरदास का है। मुसलमान कवियों का सूफीवाद हिंदुओं के विशिष्टाद्वैतवाद से बहुत भिन्न नहीं है। कुछ भावुक मुसलमान कवियों द्वारा सूफीवाद से रंगी हुई उत्तम रचनाएं लिखी गई।

संक्षेप में भक्ति-युग की चार प्रमुख काव्य-धाराएं मिलती हैं –

सगुण भक्ति

रामाश्रयी शाखा,
कृष्णाश्रयी शाखा।

निर्गुण भक्ति

ज्ञानाश्रयी शाखा,
प्रेमाश्रयी शाखा।

संत कवि

निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रमुख संत कवियों में कबीर, कमाल, रैदास या रविदास, धर्मदास, गुरू नानक, दादूदयाल, सुंदरदास, रज्जब, मलूकदास, अक्षर अनन्य, जंभनाथ, सिंगा जी, हरिदास निरंजनी प्रमुख हैं।

परिचय

तेरहवीं सदी तक धर्म के क्षेत्र में बड़ी अस्तव्यस्तता आ गई। जनता में सिद्धों और योगियों आदि द्वारा प्रचलित अंधविश्वास फैल रहे थे, शास्त्रज्ञानसंपन्न

वर्ग में भी रूढ़ियों और आडंबर की प्रधानता हो चली थी। मायावाद के प्रभाव से लोकविमुखता और निष्क्रियता के भाव समाज में पनपने लगे थे। ऐसे समय में भक्तिआंदोलन के रूप में ऐसा भारतव्यापी विशाल सांस्कृतिक आंदोलन उठा जिसने समाज में उत्कर्षविधायक सामाजिक और वैयक्तिक मूल्यों की प्रतिष्ठा की।

भक्ति आंदोलन का आरंभ दक्षिण के आलवार संतों द्वारा दसवीं सदी के लगभग हुआ। वहाँ शंकराचार्य के अद्वैतमत और मायावाद के विरोध में चार वैष्णव संप्रदाय खड़े हुए। इन चारों संप्रदायों ने उत्तर भारत में विष्णु के अवतारों का प्रचार-प्रसार किया। इनमें से एक के प्रवर्तक रामानुजाचार्य थे, जिनकी शिष्यपरंपरा में आनेवाले रामानंद ने (पंद्रहवीं सदी) उत्तर भारत में रामभक्ति का प्रचार किया। रामानंद के राम ब्रह्म के स्थानापन्न थे जो राक्षसों का विनाश और अपनी लीला का विस्तार करने के लिए संसार में अवतीर्ण होते हैं। भक्ति के क्षेत्र में रामानंद ने ऊँच-नीच का भेदभाव मिटाने पर विशेष बल दिया। राम के सगुण और निर्गुण दो रूपों को माननेवाले दो भक्तों - कबीर और तुलसी को इन्होंने प्रभावित किया। विष्णुस्वामी के शुद्धाद्वैत मत का आधार लेकर इसी समय बल्लभाचार्य ने अपना पुष्टिमार्ग चलाया। बारहवीं से सोलहवीं सदी तक पूरे देश में पुराणसम्मत कृष्णचरित् के आधार पर कई संप्रदाय प्रतिष्ठित हुए, जिनमें सबसे ज्यादा प्रभावशाली वल्लभ का पुष्टिमार्ग था। उन्होंने शांकर मत के विरुद्ध ब्रह्म के सगुण रूप को ही वास्तविक कहा। उनके मत से यह संसार मिथ्या या माया का प्रसार नहीं है बल्कि ब्रह्म का ही प्रसार है, अतः सत्य है। उन्होंने कृष्ण को ब्रह्म का अवतार माना और उसकी प्राप्ति के लिए भक्त का पूर्ण आत्मसमर्पण आवश्यक बतलाया। भगवान् के अनुग्रह या पुष्टि के द्वारा ही भक्ति सुलभ हो सकती है। इस संप्रदाय में उपासना के लिए गोपीजनवल्लभ, लीलापुरुषोत्तम कृष्ण का मधुर रूप स्वीकृत हुआ। इस प्रकार उत्तर भारत में विष्णु के राम और कृष्ण अवतारों की प्रतिष्ठा हुई।

यद्यपि भक्ति का स्रोत दक्षिण से आया तथापि उत्तर भारत की नई परिस्थितियों में उसने एक नया रूप भी ग्रहण किया। मुसलमानों के इस देश में बस जाने पर एक ऐसे भक्तिमार्ग की आवश्यकता थी जो हिंदू और मुसलमान दोनों को ग्राह्य हो। इसके अतिरिक्त निम्न वर्ग के लिए भी अधिक मान्य मत वही हो सकता था जो उन्हीं के वर्ग के पुरुष द्वारा प्रवर्तित हो। महाराष्ट्र के संत नामदेव ने 14वीं शताब्दी में इसी प्रकार के भक्तिमत का सामान्य जनता में प्रचार किया

जिसमें भगवान के सगुण और निर्गुण दोनों रूप गृहित थे। कबीर के संतमत के ये पूर्वपुरुष हैं। दूसरी ओर सूफी कवियों ने हिंदुओं की लोककथाओं का आधार लेकर ईश्वर के प्रेममय रूप का प्रचार किया।

इस प्रकार इन विभिन्न मतों का आधार लेकर हिंदी में निर्गुण और सगुण के नाम से भक्तिकाव्य की दो शाखाएँ साथ साथ चलीं। निर्गुणमत के दो उपविभाग हुए – ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी। पहले के प्रतिनिधि कबीर और दूसरे के जायसी हैं। सगुणमत भी दो उपधाराओं में प्रवाहित हुआ – रामभक्ति और कृष्णभक्ति। पहले के प्रतिनिधि तुलसी हैं और दूसरे के सूरदास।

भक्तिकाव्य की इन विभिन्न प्रणलियों की अपनी अलग–अलग विशेषताएँ हैं पर कुछ आधारभूत बातों का सन्निवेश सब में है। प्रेम की सामान्य भूमिका सभी ने स्वीकार की। भक्तिभाव के स्तर पर मनुष्यमात्र की समानता सबको मान्य है। प्रेम और करुणा से युक्त अवतार की कल्पना तो सगुण भक्तों का आधार ही है पर निर्गुणोपासक कबीर भी अपने राम को प्रिय, पिता और स्वामी आदि के रूप में स्मरण करते हैं। ज्ञान की तुलना में सभी भक्तों ने भक्तिभाव को गौरव दिया है। सभी भक्त कवियों ने लोकभाषा का माध्यम स्वीकार किया है।

ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रमुख कवि कबीर पर तात्कालिक विभिन्न धार्मिक प्रवृत्तियों और दार्शनिक मतों का सम्मिलित प्रभाव है। उनकी रचनाओं में धर्मसुधारक और समाजसुधारक का रूप विशेष प्रखर है। उन्होंने आचरण की शुद्धता पर बल दिया। बाह्याडंबर, रूढ़ियों और अंधविश्वासों पर उन्होंने तीव्र कशाघात किया। मनुष्य की क्षमता का उद्घोष कर उन्होंने निम्नश्रेणी की जनता में आत्मगौरव का भाव जगाया। इस शाखा के अन्य कवि रैदास, दादू हैं।

अपनी व्यक्तिगत धार्मिक अनुभूति और सामाजिक आलोचना द्वारा कबीर आदि संतों ने जनता को विचार के स्तर पर प्रभावित किया था। सूफी संतों ने अपने प्रेमाख्यानों द्वारा लोकमानस को भावना के स्तर पर प्रभावित करने का प्रयत्न किया। ज्ञानमार्गी संत कवियों की वाणी मुक्तकबद्ध है, प्रेममार्गी कवियों की प्रेमभावना लोकप्रचलित आख्यानों का आधार लेकर प्रबंधकाव्य के रूप में ख्यायित हुई है। सूफी ईश्वर को अनंत प्रेम और सौंदर्य का भंडार मानते हैं। उनके अनुसार ईश्वर को जीव प्रेम के मार्ग से ही उपलब्ध कर सकता है। साधना के मार्ग में आनेवाली बाधाओं को वह गुरु या पीर की सहायता से साहसपूर्वक पार करके अपने परमप्रिय का साक्षात्कार करता है। सूफियों ने चाहे अपने मत के

प्रचार के लिए अपने कथाकाव्य की रचना की हो पर साहित्यिक दृष्टि से उनका मूल्य इसलिए है कि उसमें प्रेम और उससे प्रेरित अन्य संवेगों की व्यंजना सहजबोध्य लौकिक भूमि पर हुई है। उनके द्वारा व्यंजित प्रेम ईश्वरोन्मुख है पर सामान्यतः यह प्रेम लौकिक भूमि पर ही संक्रमण करता है। परमप्रिय के सौंदर्य, प्रेमक्रीड़ा और प्रेमी के विरहोद्वेग आदि का वर्णन उन्होंने इतनी तन्मयता से किया है और उनके काव्य का मानवीय आधार इतना पुष्ट है कि आध्यात्मिक प्रतीकों और रूपकों के बावजूद उनकी रचनाएँ प्रेमसमर्पित कथाकाव्य की श्रेष्ठ कृतियाँ बन गई हैं। उनके काव्य का पूरा वातावरण लोकजीवन का और गार्हस्थिक है। प्रेमाख्यानकों की शैली फारसी के मसनवी काव्य जैसी है।

इस धारा के सर्वप्रमुख कवि जायसी हैं, जिनका 'पदमावत' अपनी मार्मिक प्रेमव्यंजना, कथारस और सहज कलाविन्यास के कारण विशेष प्रशंसित हुआ है। इनकी अन्य रचनाओं में 'अखरावट' और 'आखिरी कलाम' आदि हैं, जिनमें सूफी संप्रदायसंगत बातें हैं1 इस धारा के अन्य कवि हैं कुतबन, मंझन, उसमान, शेख, नबी और नूरमुहम्मद आदि।

ज्ञानमार्गी शाखा के कवियों में विचार की प्रधानता है तो सूफियों की रचनाओं में प्रेम का एकांतिक रूप व्यक्त हुआ है। सगुण धारा के कवियों ने विचारात्मक शुष्कता और प्रेम की एकांगिता दूरकर जीवन के सहज उल्लासमय और व्यापक रूप की प्रतिष्ठा की। कृष्णभक्ति शाखा के कवियों ने आनंदस्वरूप लीलापुरुषोत्तम कृष्ण के मधुर रूप की प्रतिष्ठा कर जीवन के प्रति गहन राग को स्फूर्त किया। इन कवियों में सूरसागर के रचयिता महाकवि सूरदास श्रेष्ठतम हैं, जिन्होंने कृष्ण के मधुर व्यक्तित्त्व का अनेक मार्मिक रूपों में साक्षात्कार किया। ये प्रेम और सौंदर्य के निसर्गसिद्ध गायक हैं। कृष्ण के बालरूप की जैसी विमोहक, सजीव और बहुविध कल्पना इन्होंने की है वह अपना सानी नहीं रखती। कृष्ण और गोपियों के स्वच्छंद प्रेमप्रसंगों द्वारा सूर ने मानवीय राग का बड़ा ही निश्छल और सहज रूप उद्घाटित किया है। यह प्रेम अपने सहज परिवेश में सहयोगी भाववृत्तियों से संपृक्त होकर विशेष अर्थवान् हो गया है। कृष्ण के प्रति उनका संबंध मुख्यतः सख्यभाव का है। आराध्य के प्रति उनका सहज समर्पण भावना की गहरी से गहरी भूमिकाओं को स्पर्श करनेवाला है। सूरदास वल्लभाचार्य के शिष्य थे। वल्लभ के पुत्र बिट्ठलनाथ ने कृष्णलीलागान के लिए अष्टछाप के नाम से आठ कवियों का निर्वाचन किया था। सूरदास इस मंडल के सर्वोत्कृष्ट कवि हैं। अन्य विशिष्ट कवि नंददास और परमानंददास हैं। नंददास

की कलाचेतना अपेक्षाकृत विशेष मुखर है। मध्ययुग में कृष्णभक्ति का व्यापक प्रचार हुआ और वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग के अतिरिक्त अन्य भी कई संप्रदाय स्थापित हुए, जिन्होंने कृष्णकाव्य को प्रभावित किया। हितहरिवंश (राधावल्लभी संप्र.), हरिदास (टट्टी संप्र.), गदाधर भट्ट और सूरदास मदनमोहन (गौड़ीय संप्र.) आदि अनेक कवियों ने विभिन्न मतों के अनुसार कृष्णप्रेम की मार्मिक कल्पनाएँ कीं। मीरा की भक्ति दांपत्यभाव की थी जो अपने स्वतःस्फूर्त कोमल और करुण प्रेमसंगीत से आंदोलित करती हैं। नरोत्तमदास, रसखान, सेनापति आदि इस धारा के अन्य अनेक प्रतिभाशाली कवि हुए जिन्होंने हिंदी काव्य को समृद्ध किया। यह सारा कृष्णकाव्य मुक्तक या कथाश्रित मुक्तक है। संगीतात्मकता इसका एक विशिष्ट गुण है।

कृष्णकाव्य ने भगवान् के मधुर रूप का उद्घाटन किया पर उसमें जीवन की अनेकरूपता नहीं थी, जीवन की विविधता और विस्तार की मार्मिक योजना रामकाव्य में हुई। कृष्णभक्ति काव्य में जीवन के माधुर्य पक्ष का स्फूर्तिप्रद संगीत था, रामकाव्य में जीवन का नीतिपक्ष और समाजबोध अधिक मुखरित हुआ। एक ने स्वच्छंद रागतत्त्व को महत्व दिया तो दूसरे ने मर्यादित लोकचेतना पर विशेष बल दिया। एक ने भगवान की लोकरंजनकारी सौंदर्यप्रतिमा का संगठन किया तो दूसरे ने उसके शक्ति, शील और सौंदर्यमय लोकमंगलकारी रूप को प्रकाशित किया। रामकाव्य का सर्वोत्कृष्ट वैभव 'रामचरितमानस' के रचयिता तुलसीदास के काव्य में प्रकट हुआ जो विद्याविद् ग्रियर्सन की दृष्टि में बुद्धदेव के बाद के सबसे बड़े जननायक थे। पर काव्य की दृष्टि से तुलसी का महत्व भगवान के एक ऐसे रूप की परिकल्पना में है, जो मानवीय सामर्थ्य और औदात्य की उच्चतम भूमि पर अधिष्ठित है। तुलसी के काव्य की एक बड़ी विशेषता उनकी बहुमुखी समन्वयभावना है, जो धर्म, समाज और साहित्य सभी क्षेत्रों में सक्रिय है। उनका काव्य लोकोन्मुख है। उसमें जीवन की विस्तीर्णता के साथ गहराई भी है। उनका महाकाव्य रामचरितमानस राम के संपूर्ण जीवन के माध्यम से व्यक्ति और लोकजीवन के विभिन्न पक्षों का उद्घाटन करता है। उसमें भगवान राम के लोकमंगलकारी रूप की प्रतिष्ठा है। उनका साहित्य सामाजिक और वैयक्तिक कर्तव्य के उच्च आदर्शों में आस्था दृढ़ करनेवाला है। तुलसी की 'विनयपत्रिका' में आराध्य के प्रति, जो कवि के आदर्शों का सजीव प्रतिरूप है, उनका निरंतर और निश्छल समर्पणभाव, काव्यात्मक आत्माभिव्यक्ति का उत्कृष्ट दृष्टांत है। काव्याभिव्यक्ति के विभिन्न रूपों पर उनका समान अधिकार है। अपने समय में

प्रचलित सभी काव्यशैलियों का उन्होंने सफल प्रयोग किया। प्रबंध और मुक्तक की साहित्यिक शैलियों के अतिरिक्त लोकप्रचलित अवधी और ब्रजभाषा दोनों के व्यवहार में वे समान रूप से समर्थ हैं। तुलसी के अतिरिक्त रामकाव्य के अन्य रचयिताओं में अग्रदास, नाभादास, प्राणचंद चौहान और हृदयराम आदि उल्लेख्य हैं।

आज की दृष्टि से इस संपूर्ण भक्तिकाव्य का महत्व उसक धार्मिकता से अधिक लोकजीवनगत मानवीय अनुभूतियों और भावों के कारण है। इसी विचार से भक्तिकाल को हिंदी काव्य का स्वर्ण युग कहा जा सकता है।

कृष्णाश्रयी शाखा

इस इस शाखा का सर्वाधिक प्रचार हुआ है। विभिन्न संप्रदायों के अंतर्गत उच्च कोटि के कवि हुए हैं। इनमें वल्लभाचार्य के पुष्टि-संप्रदाय के अंतर्गत अष्टछाप के सूरदास, कुम्भनदास, रसखान जैसे महान कवि हुए हैं। वात्सल्य एवं श्रृंगार के सर्वोत्तम भक्त-कवि सूरदास के पदों का परवर्ती हिंदी साहित्य पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ा है। इस शाखा के कवियों ने प्रायः मुक्तक काव्य ही लिखा है। भगवान श्रीकृष्ण का बाल एवं किशोर रूप ही इन कवियों को आकर्षित कर पाया है इसलिए इनके काव्यों में श्रीकृष्ण के ऐश्वर्य की अपेक्षा माधुर्य का ही प्राधान्य रहा है। प्रायः सब कवि गायक थे इसलिए कविता और संगीत का अद्‌भुत सुंदर समन्वय इन कवियों की रचनाओं में मिलता है। गीति-काव्य की जो परंपरा जयदेव और विद्यापति द्वारा पल्लवित हुई थी, उसका चरम-विकास इन कवियों द्वारा हुआ है। नर-नारी की साधारण प्रेम-लीलाओं को राधा-कृष्ण की अलौकिक प्रेमलीला द्वारा व्यंजित करके उन्होंने जन-मानस को रसाप्लावित कर दिया। आनंद की एक लहर देश भर में दौड़ गई। इस शाखा के प्रमुख कवि थे सूरदास, नंददास, मीरा बाई, हितहरिवंश, हरिदास, रसखान, नरोत्तमदास वगैरह। रहीम भी इसी समय हुए।

रामाश्रयी शाखा

कृष्णभक्ति शाखा के अंतर्गत लीला-पुरुषोत्तम का गान रहा तो रामभक्ति शाखा के प्रमुख कवि तुलसीदास ने मर्यादा-पुरुषोत्तम का ध्यान करना चाहा। इसलिए आपने रामचंद्र को आराध्य माना और 'रामचरित मानस' द्वारा राम-कथा को घर-घर में पहुंचा दिया। इस शाखा में अन्य कोई कवि तुलसीदास के समान

उल्लेखनीय नहीं है तथापि अग्रदास, नाभादास तथा प्राण चन्द चौहान भी इस श्रेणी में आते हैं।

रामभक्ति शाखा की प्रवृत्तियाँ रामकाव्य धारा का प्रवर्तन वैष्णव संप्रदाय के स्वामी रामानंद से स्वीकार किया जा सकता है। यद्यपि रामकाव्य का आधार संस्कृत साहित्य में उपलब्ध राम-काव्य और नाटक रहे हैं। इस काव्य धारा के अवलोकन से इसकी निम्न विशेषताएँ दिखाई पड़ती हैं –

राम का स्वरूप–रामानुजाचार्य की शिष्य परम्परा में श्री रामानंद के अनुयायी सभी रामभक्त कवि विष्णु के अवतार दशरथ-पुत्र राम के उपासक हैं। अवतारवाद में विश्वास है। उनके राम परब्रह्म स्वरूप हैं। उनमें शील, शक्ति और सौंदर्य का समन्वय है। सौंदर्य में वे त्रिभुवन को लजावन हारे हैं। शक्ति से वे दुष्टों का दमन और भक्तों की रक्षा करते हैं तथा गुणों से संसार को आचार की शिक्षा देते हैं। वे मर्यादापुरुषोत्तम और लोकरक्षक हैं। भक्ति का स्वरूप–इनकी भक्ति में सेवक-सेव्य भाव है। वे दास्य भाव से राम की आराधना करते हैं। वे स्वयं को क्षुद्रातिक्षुद्र तथा भगवान को महान बतलाते हैं। तुलसीदास ने लिखा है–'सेवक-सेव्य भाव बिन भव न तरिय उरगारि।' राम-काव्य में ज्ञान, कर्म और भक्ति की पृथक-पृथक महत्ता स्पष्ट करते हुए भक्ति को उत्कृष्ट बताया गया है। तुलसी दास ने भक्ति और ज्ञान में अभेद माना है–'भगतहिं ज्ञानहिं नहिं कुछ भेदा।' यद्यपि वे ज्ञान को कठिन मार्ग तथा भक्ति को सरल और सहज मार्ग स्वीकार करते हैं। इसके अतिरिक्त तुलसी की भक्ति का रूप वैधी रहा है,वह वेदशास्त्र की मर्यादा के अनुकूल है।

रामभक्ति साहित्य में राम के लोक-रक्षक रूप की स्थापना हुई है। तुलसी के राम मर्यादापुरुषोत्तम तथा आदर्शों के संस्थापक हैं। इस काव्य धारा में आदर्श पात्रों की सर्जना हुई है। राम आदर्श पुत्र और आदर्श राजा हैं, सीता आदर्श पत्नी हैं तो भरत और लक्ष्मण आदर्श भाई हैं। कौशल्या आदर्श माता है, हनुमान आदर्श सेवक हैं। इस प्रकार रामचरितमानस में तुलसी ने आदर्श गृहस्थ, आदर्श समाज और आदर्श राज्य की कल्पना की है। आदर्श की प्रतिष्ठा से ही तुलसी लोकनायक कवि बन गए हैं और उनका काव्य लोकमंगल की भावना से ओतप्रोत है।

तुलसी का मानस समन्वय की विराट चेष्टा है। **आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी** के शब्दों में – 'उनका सारा काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है। लोक और शास्त्र का समन्वय, गार्हस्थ्य और वैराग्य का समन्वय, भक्ति और ज्ञान का

समन्वय, भाषा और संस्कृत का समन्वय, निर्गुण और सगुण का समन्वय, पांडित्य और अपांडित्य का समन्वय रामचरितमानस में शुरू से आखिर तक समन्वय का काव्य है। हम कह सकते हैं कि तुलसी आदि रामभक्त कवियों ने समाज, भक्ति और साहित्य सभी क्षेत्रों में समन्वयवाद का प्रचार किया है।

राम भक्त कवियों की भारतीय संस्कृति में पूर्ण आस्था रही। पौराणिकता इनका आधार है और वर्णाश्रम व्यवस्था के पोषक हैं। लोकहित के साथ-साथ इनकी भक्ति स्वांतः सुखाय थी। सामाजिक तत्त्व की प्रधानता रही।

रामकाव्य में काव्य की प्रायः सभी शैलियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। तुलसीदास ने अपने युग की प्रायः सभी काव्य-शैलियों को अपनाया है। वीरगाथाकाल की छप्पय पद्धति, विद्यापति और सूर की गीतिपद्धति, गंग आदि भाट कवियों की कवित्त-सवैया पद्धति, जायसी की दोहा पद्धति, सभी का सफलतापूर्वक प्रयोग इनकी रचनाओं में मिलता है। रामायण महानाटक (प्राणचंद चौहान) और हनुमननाटक (हृदयराम) में संवाद पद्धति और केशव की रामचंद्रिका में रीति-पद्धति का अनुसरण है।

रामकाव्य में नव रसों का प्रयोग है। राम का जीवन इतना विस्तृत व विविध है कि उसमें प्रायः सभी रसों की अभिव्यक्ति सहज ही हो जाती है। तुलसी के मानस एवं केशव की रामचंद्रिका में सभी रस देखे जा सकते हैं। रामभक्ति के रसिक संप्रदाय के काव्य में शृंगार रस को प्रमुखता मिली है। मुख्य रस यद्यपि शांत रस ही रहा।

रामकाव्य में मुख्यतः अवधी भाषा प्रयुक्त हुई है। किंतु ब्रजभाषा भी इस काव्य का शृंगार बनी है। इन दोनों भाषाओं के प्रवाह में अन्य भाषाओं के भी शब्द आ गए हैं। बुंदेली, भोजपुरी, फारसी तथा अरबी शब्दों के प्रयोग यत्र-तत्र मिलते हैं। रामचरितमानस की अवधी प्रेमकाव्य की अवधी भाषा की अपेक्षा अधिक साहित्यिक है। रामकाव्य की रचना अधिकतर दोहा-चौपाई में हुई है। दोहा चौपाई प्रबंधात्मक काव्यों के लिए उत्कृष्ट छंद हैं। इसके अतिरिक्त कुण्डलिया, छप्पय, कवित्त, सोरठा, तोमर, त्रिभंगी आदि छंदों का प्रयोग हुआ है।

रामभक्त कवि विद्वान पंडित हैं। इन्होंने अलंकारों की उपेक्षा नहीं की। तुलसी के काव्य में अलंकारों का सहज और स्वाभाविक प्रयोग मिलता है। उत्प्रेक्षा, रूपक और उपमा का प्रयोग मानस में अधिक है।

ज्ञानाश्रयी मार्गी

इस शाखा के भक्त-कवि निर्गुणवादी थे और राम की उपासना करते थे। वे गुरु को बहुत सम्मान देते थे तथा जाति-पाँति के भेदों को अस्वीकार करते थे। वैयक्तिक साधना पर वे बल देते थे। मिथ्या आडंबरों और रूढ़ियों का वे विरोध करते थे। लगभग सब संत अनपढ़ थे परंतु अनुभव की दृष्टि से समृद्ध थे। प्रायः सब सत्संगी थे और उनकी भाषा में कई बोलियों का मिश्रण पाया जाता है इसलिए इस भाषा को 'सधुक्कड़ी' कहा गया है। साधारण जनता पर इन संतों की वाणी का जबरदस्त प्रभाव पड़ा है। इन संतों में प्रमुख कबीरदास थे। अन्य मुख्य संत-कवियों के नाम हैं - नानक, रैदास, दादूदयाल, सुंदरदास तथा मलूकदास।

प्रोफेसर महावीर सरन जैन ने निर्गुण भक्ति के स्वरूप के बारे में प्रश्न उठाए हैं तथा प्रतिपादित किया है कि संतों की निर्गुण भक्ति का अपना स्वरूप है, जिसको वेदांत दर्शन के सन्दर्भ में व्याख्यायित नहीं किया जा सकता। उनके शब्द हैं–

"भक्ति या उपासना के लिए गुणों की सत्ता आवश्यक है। ब्रह्म के सगुण स्वरूप को आधार बनाकर तो भक्ति/उपासना की जा सकती है किन्तु जो निर्गुण एवं निराकार है उसकी भक्ति किस प्रकार सम्भव है ? निर्गुण के गुणों का आख्यान किस प्रकार किया जा सकता है ? गुणातीत में गुणों का प्रवाह किस प्रकार माना जा सकता है ? जो निरालम्ब है, उसको आलम्बन किस प्रकार बनाया जा सकता है। जो अरूप है, उसके रूप की कल्पना किस प्रकार सम्भव है? जो रागातीत है, उसके प्रति रागों का अर्पण किस प्रकार किया जा सकता है? रूपातीत से मिलने की उत्कंठा का क्या औचित्य हो सकता है, जो नाम से भी अतीत है, उसके नाम का जप किस प्रकार किया जा सकता है?

शास्त्रीय दृष्टि से उपर्युक्त सभी प्रश्न 'निर्गुण-भक्ति' के स्वरूप को ताल ठोंककर चुनौती देते हुए प्रतीत होते हैं। कबीर आदि संतों की दार्शनिक विवेचना करते समय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने यह मान्यता स्थ्थापित की है कि उन्होंने निराकार ईश्वर के लिए भारतीय वेदांत का पल्ला पकड़ा है। इस सम्बन्ध में जब हम शांकर अद्वैतवाद एवं संतों की निर्गुण भक्ति के तुलनात्मक पक्षों पर विचार करते हैं तो उपर्युक्त मान्यता की सीमायें स्पष्ट हो जाती हैं-

(क) शांकर अद्वैतवाद में भक्ति को साधन के रूप में स्वीकार किया गया है, किन्तु उसे साध्य नहीं माना गया है। संतों ने (सूफियों ने भी) भक्ति को साध्य माना है।

(ख) शांकर अद्वैतवाद में मुक्ति के प्रत्यक्ष साधन के रूप में 'ज्ञान' को ग्रहण किया गया है। वहाँ मुक्ति के लिए भक्ति का ग्रहण अपरिहार्य नहीं है। वहाँ भक्ति के महत्व की सीमा प्रतिपादित है। वहाँ भक्ति का महत्व केवल इस दृष्टि से है कि वह अन्तःकरण के मालिन्य का प्रक्षालन करने में समर्थ सिद्ध होती है। भक्ति आत्म-साक्षात्कार नहीं करा सकती, वह केवल आत्म साक्षात्कार के लिए उचित भूमिका का निर्माण कर सकती है। संतों ने अपना चरम लक्ष्य आत्म साक्षात्कार या भगवद्-दर्शन माना है तथा भक्ति के ग्रहण को अपरिहार्य रूप में स्वीकार किया है क्योंकि संतों की दृष्टि में भक्ति ही आत्म-साक्षात्कार या भगवद्दर्शन कराती है।

प्रेमाश्रयी शाखा

मुसलमान सूफी कवियों की इस समय की काव्य-धारा को प्रेममार्गी माना गया है क्योंकि प्रेम से ईश्वर प्राप्त होते हैं, ऐसी उनकी मान्यता थी। ईश्वर की तरह प्रेम भी सर्वव्यापी तत्त्व है और ईश्वर का जीव के साथ प्रेम का ही संबंध हो सकता है, यह उनकी रचनाओं का मूल तत्त्व है। उन्होंने प्रेमगाथाएं लिखी हैं। ये प्रेमगाथाएं फारसी की मसनवियों की शैली पर रची गई हैं। इन गाथाओं की भाषा अवधी है और इनमें दोहा-चौपाई छंदों का प्रयोग हुआ है। मुसलमान होते हुए भी उन्होंने हिंदू-जीवन से संबंधित कथाएं लिखी हैं। खंडन-मंडन में न पड़कर इन फकीर कवियों ने भौतिक प्रेम के माध्यम से ईश्वरीय प्रेम का वर्णन किया है। ईश्वर को माशूक माना गया है और प्रायः प्रत्येक गाथा में कोई राजकुमार किसी राजकुमारी को प्राप्त करने के लिए नानाविध कष्टों का सामना करता है, विविध कसौटियों से पार होता है और तब जाकर माशूक को प्राप्त कर सकता है। इन कवियों में मलिक मुहम्मद जायसी प्रमुख हैं। आपका 'पद्मावत' महाकाव्य इस शैली की सर्वश्रेष्ठ रचना है। अन्य कवियों में प्रमुख हैं - मंझन, कुतुबन और उसमान।

भारतीय धर्म और संस्कृति के इतिहास में कृष्ण सदैव एक अद्भुत व विलक्षण व्यक्तित्त्व माने जाते रहे है। हमारे प्राचीन ग्रंथों में यत्र-तत्र कृष्ण

का उल्लेख मिलता है, जिससे उनके जीवन के विभिन्न रूपों का पता चलता है।

यदि वैदिक व संस्कृत साहित्य के आधार पर देखा जाए तो कृष्ण के तीन रूप सामने आते है–

1. बाल व किशोर रूप, 2. क्षत्रिय नरेश, 3. ऋषि व धर्मोपदेशक।

श्रीकृष्ण विभिन्न रूपों में लौकिक और अलौकिक लीलाएं दिखाने वाले अवतारी पुरुष हैं। गीता, महाभारत व विविध पुराणों में उन्हीं के इन विविध रूपों के दर्शन होते हैं।

कृष्ण महाभारत काल में ही अपने समाज में पूजनीय माने जाते थे। वे समय समय पर सलाह देकर धर्म और राजनीति का समान रूप से संचालन करते थे। लोगों में उनके प्रति श्रद्धा और आस्था का भाव था। कृष्ण भक्ति काव्य धारा के कवियों ने अपनी कविताओं में राधा–कृष्णा की लीलाओं को प्रमुख विषय बनाकर वृहद् काव्य सृजन किया। इस काव्यधारा की प्रमुख विशेशतायें इस प्रकार हैं–

राम और कृष्ण की उपासना

समाज में अवतारवाद की भावना के फलस्वरूप राम और कृष्ण दोनों के ही रूपों का पूजन किया गया।

दोनों के ही पूर्ण ब्रह्म का प्रतीक मानकर, आदर्श मानव के रूप में प्रस्तुत किया गया। किंतु जहाँ राम मर्यादा पुरषोत्तम के रूप में सामने आते हैं, वही कृष्ण एक सामान्य परिवार में जन्म लेकर सामंती अत्याचारों का विरोध करते हैं। वे जीवन में अधिकार और कर्तव्य के सुंदर मेल का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। वे जिस तन्मयता से गोपियों के साथ रास रचाते हैं, उसी तत्परता से राजनीति का संचालन करते हैं या फिर महाभारत के युद्ध भूमि में गीता का उपदेश देते हैं। इस प्रकार से राम व कृष्ण ने अपनी–अपनी चारित्रिक विशेषताओं द्वारा भक्तों के मानस को आंदोलित किया।

राधा-कृष्ण की लीलाएँ

कृष्ण–भक्ति काव्य धारा के कवियों ने अपनी कविताओं में राधा–कृष्ण की लीलाओं को प्रमुख विषय बनाया। श्रीमदभागवत में कृष्ण के लोकरंजक रूप को प्रस्तुत किया गया था। भागवत के कृष्ण स्वयं गोपियों से निर्लिप्त रहते हैं।

गोपियाँ बार-बार प्रार्थना करती हैं, तभी वे प्रकट होते हैं, जबकि हिन्दी कवियों के कान्हा एक रसिक छैला बनकर गोपियों का दिल जीत लेते हैं। सूरदास जी ने राधा-कृष्ण के अनेक प्रसंगों का चित्रण कर उन्हें एक सजीव व्यक्तित्त्व प्रदान किया है।

हिन्दी कवियों ने कृष्ण के चरित्र को नाना रूप-रंग प्रदान किये हैं, जो काफी लीलामयी व मधुर जान पड़ते हैं।

वात्सल्य रस का चित्रण

पुष्टिमार्ग प्रारंभ हुया तो बाल कृष्ण की उपासना का ही चलन था। अत–कवियों ने कृष्ण के बाल रूप को पहले पहले चित्रित किया।

यदि वात्सल्य रस का नाम लें तो सबसे पहले सूरदास का नाम आता है, जिन्हें आप इस विषय का विशेषज्ञ कह सकते हैं। उन्होंने कान्हा के बचपन की सूक्ष्म से सूक्ष्म गतिविधियाँ भी ऐसी चित्रित की हैं, मानो वे स्वयं वहाँ उपस्थित हों।

सूर का वात्सल्य केवल वर्णन मात्र नहीं है। जिन-जिन स्थानों पर वात्सल्य भाव प्रकट हो सकता था, उन सब घटनाओं को आधार बनाकर काव्य रचना की गयी है। माँ यशोदा अपने शिशु को पालने में सुला रही हैं और निंदिया से विनती करती है कि वह जल्दी से उनके लाल की अंखियों में आ जाए-

जसोदा हरी पालनै झुलावै।
हलरावै दुलराय मल्हरावै जोई सोई कछु गावै ॥
मेरे लाल कौ आउ निंदरिया, काहै मात्र आनि सुलावै ।
तू काहे न बेगहि आवे, तो का कान्ह बुलावें ॥

कृष्ण का शैशव रूप घटने लगता है तो माँ की अभिलाषाएं भी बढ़ने लगती हैं। उसे लगता है कि कब उसका शिशु उसका आँचल पकड़कर डोलेगा। कब, उसे माँ और अपने पिता को पिता कहके पुकारेगा, वह लिखते हैं–

जसुमति मन अभिलाष करै,
कब मेरो लाल घुतरुवनी रेंगै, कब घरनी पग द्वैक भरे,
कब वन्दहिं बाबा बोलौ, कब जननी काही मोहि ररै,
रब घौं तनक-तनक कछु खैहे, अपने कर सों मुखहिं भरे
कब हसि बात कहेगौ मौ सौं, जा छवि तै दुख दूरि हरै।

सूरदास ने वात्सल्य में संयोग पक्ष के साथ-साथ वियोग का भी सुंदर वर्णन किया है। जब कंस का बुलावा लेकर अक्रूर आते हैं तो कृष्ण व बलराम को मथुरा जाना पड़ता है। इस अवसर पर सूरदास ने वियोग का मर्मस्पर्शी चित्र प्रस्तुत किया है। यशोदा बार-बार विनती करती हैं कि कोई उनके गोपाल को जाने से रोक ले–

जसोदा बार बार यों भारवै
है ब्रज में हितू हमारौ, चलत गोपालहिं राखै।

जब ऊधौ कान्हा का संदेश लेकर आते हैं, तो माँ यशोदा का हृदय अपने पुत्र के वियोग में रो देता है, वह देवकी को संदेश भिजवाती हैं–

संदेश देवकी सों कहियो।
हों तो धाय तिहारे सुत की कृपा करत ही रहियो॥
उबटन तेल तातो जल देखत ही भजि जाने।
जोई-चोर मांगत सोइ-सोइ देती करम-करम कर न्हाते॥
तुम तो टेक जानतिही धै है ताऊ मोहि कहि आवै ।
प्रातः उठत मेरे लाड लडैतहि माखन रोटी भावै ॥

श्रृंगार का वर्णन

कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्ण व गोपियों के प्रेम वर्णन के रूप में पूरी स्वछंदता से श्रृंगार रस का वर्णन किया है। कृष्ण व गोपियों का प्रेम धीरे-धीरे विकसित होता है। कृष्ण, राधा व गोपियों के बीच अक्सर छेड़छाड़ चलती रहती है–

तुम पै कौन दुहावै गैया
इत चितवन उन धार चलावत, यहै सिखायो मैया ।
सूर कहा ए हमको जातै छाछहि बेचनहारि ॥

कवि विद्यापति ने कृष्ण के भक्त-वत्सल रूप को छोड़ कर श्रृंगारिक नायक वाला रूप ही चित्रित किया है। विद्यापति की राधा भी एक प्रवीण नायिका की तरह कहीं मुग्धा बनाती है, तो कभी कहीं अभिसारिका। विद्यापति के राधा-कृष्ण यौवनावस्था में ही मिलते हैं और उनमें प्यार पनपने लगता है। प्रेमी नायक, प्रेमिका को पहली बार देखता है तो रमनी के रूप पर मुग्ध हो जाता है–

सजनी भलकाए पेखन न मेल
मेघ-माल सयं तड़ित लता जनि
हिरदय सेक्ष दई गेल ।

हे सखी ! मैं तो अच्छी तरह उस सुन्दरी को देख नहीं सका क्योंकि जिस प्रकार बादलों की पंक्ति में एका एक बिजली चमक कर चिप जाती है, उसी प्रकार प्रिया के सुंदर शरीर की चमक मेरे ह्रदय में भाले की तरह उतर गयी और मैं उसकी पीड़ा झेल रहा हूँ।

विद्यापति की राधा अभिसार के लिए निकलती है तो सांप पाँव में लिपट जाता है। वह इसमें भी अपना भला मानती है, कम से कम पाँव में पड़े नूपुरों की आवाज तो बंद हो गयी।

इसी प्रकार विद्यापति वियोग में भी वर्णन करते हैं। कृष्ण के विरह में राधा की आकुलता, विवशता, दैन्य व निराशा आदि का मार्मिक चित्रण हुआ है।

सजनी, के कहक आओव मधाई।
विरह-पयोचि पार किए पाऊव, मझुम नहिं पति आई।
एखत तखन करि दिवस गमाओल, दिवस दिवस करि मासा,
मास-मास करि बरस गमाओल, छोड़ लूँ जीवन आसा।
बरस-बरस कर समय गमाओल, खोल लूं कानुक आसे,
हिमकर-किरन नलिनी जदि जारन, कि कर्ण माधव मासे।

इस प्रकार कृष्ण भक्त कवियों ने प्रेम की सभी अवस्थाओं व भाव-दशाओं का सफलतापूर्वक चित्रण किया है।

भक्ति भावना

यदि भक्त-भावना के विषय में बात करें तो कृष्ण भक्त कवियों में सूरदास, कुंभनदास व मीरा का नाम उल्लेखनीय है।

सूरदासजी ने वल्लभाचार्य जी से दीक्षा ग्रहण कर लेने के पूर्व प्रथम रूप में भक्ति-भावना की व्यंजना की है–

नाथ जू अब कै मोहि उबारो।
पतित में विख्यात पतित हौं पावन नाम विहारो।।

सूर के भक्ति काव्य में अलौकिकता और लौकितता, रागात्मकता और बौद्धिकता, माधुर्य और वात्सल्य सब मिलकर एकाकार हो गए हैं।

भगवान् कृष्ण से अनन्य भक्ति होने के नाते उनके मन से सच्चे भाव निकलते हैं। उन्होंने ही भ्रमरनी परम्परा को नए रूप में प्रस्तुत किया। भक्त-शिरोमणि सूर ने इसमे सगुणोपासना का चित्रण, ह्रदय की अनुभूति के आधार पर किया है।

अंत में गोपियों अपनी आस्था के बल पर निर्गुण की उपासना का खंडन कर देती हैं।

उधौ मन नाहिं भए दस-बीस।
एक हुतो सो गयो श्याम संग
को आराधै ईश।।

मीराबाई कृष्ण को अपने प्रेमी ही नहीं , अपितु पति के रूप में भी स्मरण करती हैं। वे मानती है कि वे जन्म-जन्म से ही कृष्ण की प्रेयसी व पत्नी रही हैं। वे प्रिय के प्रति आत्म-निवेदन व उपालंभ के रूप में प्रणय-वेदना की अभिव्यक्ति करती हैं–

देखो सईयां हरि मन काठ कियो
आवन कह गयो अजहूं न आयो, करि करि गयो।
खान-पान सुध-बुध सब बिसरी कैसे करि मैं जियो।।
वचन तुम्हार तुमहीं बिसरै, मन मेरो हर लियो।
मीरां कहे प्रभु गिरधर नागर, तुम बिन फारत हियो।।

भक्ति काव्य के क्षेत्र में मीरा सगुण-निर्गुण श्रद्धा व प्रेम, भक्ति व रहस्यवाद के अन्तर को भरते हुए, माधुर्य भाव को अपनाती हैं। उन्हें तो अपने सांवरियां का ध्यान कराने में, उनको हृदय की रागिनी सुनाने व उनके सम्मुख नृत्य करने में ही आनंद आता है।

आली रे मेरे नैणां बाण पड़ीं,
चित चढ़ी मेरे माधुरी मुरल उर बिच आन अड़ी।
कब की ठाढ़ी पंछ निहारूं अपने भवन खड़ी।।

ब्रज भाषा व अन्य भाषाओं का प्रयोग

अनेक कवियों ने नि:संकोच कृष्ण की जन्मभूमि में प्रचलित ब्रज भाषा को ही अपने काव्य में प्रयुक्त किया। सूरदास व नंददास जैसे कवियों ने भाषा के रूप को इतना निखार दिया कि कुछ समय बाद यह समस्त उत्तरी भारत की साहित्यिक भाषा बन गई।

यद्यपि ब्रज भाषा के अतिरिक्त कवियों ने अपनी-अपनी मातृ भाषाओं में कृष्ण काव्य की रचना की। विद्यापति ने मैथिली भाषा में अनेक भाव प्रकट किए।

सप्ति हे कतहु न देखि मधाई
कांप शरीर धीन नहि मानस, अवधि निअर मेल आई
माधव मास तिथि भयो माधव अवधि कहए पिआ गेल।
मीरा ने राजस्थानी भाषा में अपने भाव प्रकट किए।
रमैया बिन नींद न आवै
नींद न आवै विरह सतावै, प्रेम की आंच हुलावै।

प्रमुख कवि

कृष्ण भक्ति धारा के कवियों ने अपने काव्य में भावात्मकता को ही प्रधानता दी। संगीत के माधुर्य से मानो उनका काव्य और निखर आया। इनके काव्य का भाव व कला पक्ष दोनों ही प्रौढ़ थे व तत्कालीन जन ने उनका भरपूर रसास्वादन किया। कृष्ण भक्ति साहित्य ने सैकड़ों वर्षो तक भक्तजनों का हृदय मुग्ध किया। हिन्दी साहित्य के इतिहास में कृष्ण की लीलाओं के गान, कृष्ण के प्रति सख्य भावना आदि की दृष्टि से ही कृष्ण काव्य का महत्त्व नहीं है, वरन आगे चलकर राधा कृष्ण को लेकर नायक नायिका भेद, नख शिख वर्णन आदि की जो परम्परा रीतिकाल में चली, उस के बीज इसी काव्य में सन्निहित है।रीतिकालीन काव्य में ब्रजभाषा को जो अंलकत और कलात्मक रूप मिला, वह कृष्ण काव्य के कवियों द्वारा भाषा को प्रौढ़ता प्रदान करने के कारण ही संभव हो सका।

7

सूरदास जी का वात्सल्य भाव

भक्ति के आचार्यों ने वत्सल अथवा वात्सल्य भक्ति पर बल देकर और उसका भक्ति में समावेश करके उसके गौरव को और अधिक बढ़ा दिया है। भक्ति के आचार्यों ने वात्सल्यभक्ति का निर्वचन भी किया और उसके उदाहरणस्वरूप अभिव्यक्ति भी दी। हिंदी के भक्त कवियों ने उस दाय को स्वीकार किया और अपने काव्यों में आचार्यप्रणीत ग्रन्थों से प्रेरणा भी ली। इस तरह के कवियों में सूरदास ऐसे ही भक्तसंत हैं, जिन्होंने श्रीमद्‌भागवत महापुराण के आधार पर अपने सूरसागर के पदों की रचना की। श्रीमद्‌भागवत में वर्णित श्रीकृष्ण की लीलाओं को उन्होंने काव्यमय विस्तार दिया। श्रीकृष्ण की बाललीलाओं के चित्रण में उनकी मति में व्यापक विस्तार और निखार आया। उनके विविधता भरे पदों में वात्सल्य-वर्णन के कारण विद्वानों ने वात्सल्यरस की पूर्ण प्रतिष्ठा का श्रेय संत सूरदास जी को ही दिया है।

सूर-साहित्य के दो रूप मिलते हैं- (1) वल्लभाचार्य जी की भेंट से पहले जब ये विनय और दीनता भरे भावों के पद गाते थे और (2) वल्लभाचार्य जी की भेंट के बाद जब इन्होंने भगवान की लीलाओं का वर्णन किया। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में आया है कि सूरदास जी ने वल्लभाचार्य जी के सामने दो पद गाये। पहला पद था- 'हरि हौं सब पतितनि को नायक' और दूसरा था- 'प्रभु, हौं सब पतितनि कौ टीकौ'। इन्हें सुनकर वल्लभाचार्य जी ने कहा- 'जो

सूर है कें ऐसो घिघियात काहे को है कछु भगवल्लीला वर्णन करि'। सूरदास जी ने कहा कि मुझमें ऐसी समझ नहीं है। तब वल्लभाचार्य जी ने इन्हें उपदेश दिया। तब से सूरदास जी को नवधा-भक्ति सिद्ध हो गयी और इन्होंने भगवल्लीला की दृष्टि का स्फुरण पाया। जैसे कोई बालक पुराने खिलौनें को छोड़कर फिर नये खिलौने से ही खेलता है- ऐसे सूरदास जी ने उसके बाद से भगवान की लीलाओं का वर्णन प्रारम्भ किया।

सूरदास जी उच्च कोटि के संत होने के साथ-साथ उच्च कोटि के कवि भी थे। इन्होंने वात्सल्य और शृंगाररसप्रवाहिनी ऐसी विस्तृत और गम्भीरताभरी भावाभिव्यक्ति की है कि इन्हें वात्सल्य और शृंगाररस का सम्राट कहा जाता है। सूरदास जी अन्धे थे, परंतु इन्हें दिव्य दृष्टि प्राप्त थी। ये भगवान के कीर्तनकार थे। जैसा भगवान का स्वरूप होता था, वे उसे अपनी बंद आँखों से वैसा ही वर्णन कर देते थे। 'अष्टसखान की वार्ता' में आया है कि एक बार श्रीविट्ठलनाथ जी के पुत्रों ने उनकी परीक्षा लेनी चाही। उन्होंने नवनीतप्रिय बालकृष्ण की मूर्ति का कोई शृंगार नहीं किया। नग्न मूर्ति पर मोतियों की माला लटका दी और सूरदास जी कीर्तन करने की प्रार्थना की। दिव्य-दृष्टि प्राप्त सूरदास जी ने पद गाया। भगवान कृष्ण की लीलाओं का गायन करना ही उनका प्रमुख उद्देश्य था। कृष्ण की बाल क्रीड़ाओं और मातृ-भावना को लेकर सूरदास ने जो मनोहारी और प्रभावशाली वर्णन किया है, वह अद्वितीय है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सूरदास की प्रशंसा करते हुये लिखा है, कृष्ण जन्म की आनन्द-बधाई के उपरान्त ही बाल-लीला प्रारम्भ हो जाती है। जितने विस्तृत और विशुद्ध रूप में बाल्य जीवन का चित्रण इन्होंने किया है, उतने विस्तृत रूप में और किसी कवि ने नहीं किया। शैशव से लेकर कौमार अवस्था तक के क्रम से लगे हुये न जाने कितने चित्र मौजूद हैं। उनमें केवल बाहरी रूपों और चेष्टाओं का ही विस्तृत और सूक्ष्म वर्णन नहीं है, कवि ने बालकों की अन्त:प्रकृति में भी पूरा प्रवेश किया है और अनेक बाल्यभावों की सुन्दर स्वाभाविक व्यंजना की है। आचार्य शुक्ल ने अन्यत्र भी लिखा है कि सूरदास वात्सल्य का कोना-कोना झाँक आये हैं।

कृष्ण जन्म का समाचार सुनते ही ब्रज की गलियों में अपार आनन्द का समुद्र उमड़ पड़ता है, जिसकी अभिव्यक्ति सूरदास ने एक ग्वालिन के मुख से की है-

सोभा सिंधु न अंत रही री।
नंद भवन भरि-पूरि उँमगि चलि ब्रज की बीथिन फिरति बही री।
देखी जाइ गोकुल मैं घर-घर बेचति फिरति दही री।
कहँ लगि कहौं बनाई बहुत विधि कहत न मुख सहसहु निबही री।
जसुमति उदर अगाध उदधि तें उपजीं ऐसी सबनि कही री।
सुर स्याम प्रभु इन्द्र नीलमनि ब्रज वनिता उर लाइ गही री।

यशोदा की गोद में विराजमान कृष्ण की छवि की सुन्दर अभिव्यक्ति प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने की है-

गोद लिए जसुदा नन्दनंदहिं
पीत झहुलिया की छवि छाजति बिज्जुलता सोहति मनु कंदहिं।

इसी प्रकार यशोदा द्वारा कृष्ण को पालने में सुलाने का कितना स्वाभाविक, मार्मिक चित्र प्रस्तुत गीत में कवि ने अभिव्यक्त किया है-

यशोदा हरि पालने झुलावै।
हलरावै दुलराइ मल्हावै, जोइ-सोइ कछु गावै।
मेरे लाल को आउ निंदरिया, काहै ना आनि सुवावै।
तू काहै न बेगहिं आवै, तोको कान्ह बुलावै।
कबहुँ पलक हरि मूँद लेत हैं, कबहुँ अधर फरकावै।
सोवत जानि मौन है करहिँ, करि-करि सैन बतावै।
इति अंतर अकुलाई उठे हरि, जसुमति मधुर गावै।
जो सुख सूर अमर मुनि दुर्लभ, सो नंदभामिनी पावै।

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि ने यशोदा के माध्यम से भारतीय नारी का ही चित्र उकेरा है, जो पालने में अपने लाल को सुला रही है, सोया जानकर आँखों के इशारे से सबको चुप रहने को कहती है। वहाँ से हटकर घर के और काम करना ही चाहती है कि बालक अकुलाकर उठ जाता है।

यशोदा श्रीकृष्ण को अँगुली पकड़कर चलना सिखाती हैं और श्रीकृष्ण बाल-सुलभ प्रवृत्ति के कारण डगमगाते कदमों से आगे बढ़ते हैं-

सिखवत चलन जसोदा मैया।
अरबराइ कर पानि गहावत डगमगाइ धरैं पैंया।

माता की आवाज सुनकर, दौड़कर कृष्ण के आने का और यशोदा के गोद में लेने का चित्र प्रस्तुत गीत में अभिव्यक्त किया है-

नंदधाम खेलत हरि डोलत।
जसुमति करति रसोई भीतर आपुन किलकत बोलत।
टेरि उठी जसुमति मोहन कौ आबहु काहै न धाइ।
बैज सुनत माता पहिचानि चले घुटरूवनि पाइ।
लै उठाइ अंचल गहि पोंछे धूरि भरी सब देह।
सूरज प्रभु जसुमति रज झारति कहाँ भरि यह खेह।

यशोदा द्वारा स्नान करने को कहने पर कन्हैया किस तरह मचलते हैं, यह चित्र प्रस्तुत गीत में अभिव्यक्त हुआ है–

जसोदा जबहिं कह्यौ अन्हवावन रोइ गए हरि लोटत री।
तेल उबटनौ लै आगे धरि लालहिं चोटत पोटत री।
मैं बलि जाऊँ न्हाउ जनि मोहन कत रोवत बिनु काजै री।
पाछै धरि राख्यौ छपाइ कै उबटन तेल समाजै री।
महरि बहुत विनती करि राखति मानत नहीं कन्हैया री।
सूर स्याम अति ही बिरूझाने सुर मुनि अंत न पैया री।

प्राय: बच्चे पिता के साथ भोजन करते हैं, तुलसीदास के राम भी दशरथ के साथ भोजन करते हैं। श्रीकृष्ण भी नन्दबाबा के साथ भोजन कर रहे हैं, भोजन करते समय बाल सुलभ चपलता का वर्णन प्रस्तुत पद में कवि ने किया है–

जैवत कान्ह नंद इक ठौरे।
कछुक खात लपटात दोऊ कर बाल केलि अति भोरे।
बरा कौर मेलत मुख भीतर मिरिच दसन टकटौरे।
तीछन लगी नैन भरि आए रोवत बाहर दौरे।
फूँकति बदन रोहिनी ठाढ़ी लिए लगाइ अँकोरे।
सूर स्याम की मधुर कौर दे कीन्हे तात निहोरे।

माता यशोदा श्रीकृष्ण को दूध पिलाने के लिये लालच देती हैं कि दूध पीने से चोटी जल्दी बड़ी हो जायेगी, इसीलिये दूध पीते समय श्रीकृष्ण उत्सुकतावश अपनी चोटी देखते जाते हैं कि चोटी बढ़ रही है या नहीं–

मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी।
किती बार मोहिं दूध पियत भई, यह अजहुँ है छोटी।

श्रीकृष्ण को माखन चोर भी कहा जाता है, श्रीकृष्ण द्वारा माखन चोरी और मणि रचित खम्भे में अपने ही प्रतिबिंब से किये वार्तालाप का वर्णन प्रस्तुत गीत में कवि ने अभिव्यक्त किया है-

आजु सखि मनि खंभ निकट हरि जंह गोरस को गोरी।
निज प्रतिबिंब सिखावत ज्यों सिसु, प्रगट करैं जनि चोरी।
अरध भाग आजु तैं हम तुम भली बनी है, जोरी।
माखन खाहु, कतहि डारत हौ छाँड़ि देहु मति भोरी।
बाँट न लेहु सबै चाहत हौ यहै बात है थोरी।

बालक कृष्ण द्वारा चन्द्रमा को देखकर उसे प्राप्त करने के लिये मचल उठने का और हठ करने का मनोरम वर्णन कवि ने प्रस्तुत पंक्तियों में किया है-

मैया मैं तो चन्द खिलौना लैहौं।
जैहों लोटि धरनि मैं अबहिं तेरी गोद न ऐहौं।
सुरभि का पयपान न करिहौं, बेनी सिर न गुहैहौं।
ह्वै हौ पूत नन्दबाबा को तैरो सुत न कहैहौं।

आँख-मिचौनी के खेल में किस प्रकार माता यशोदा श्रीकृष्ण का पक्ष लेती हैं और किस प्रकार श्रीकृष्ण अपने निर्णय पर अडिग हैं कि श्रीदामा को ही चोर बनाना है। साथ ही पुत्र के जीतने पर माता यशोदा की हृदयग्राही खुशी का वर्णन प्रस्तुत गीत में कवि ने किया है-

हरि तब अपनी आँख मुँदाई।
सखा सहित बलराम छुपाने जहँ तहँ गई भगाई।
कान लागि कह्यौ जननि यशोदा वा घर में बलराम।
बलराम को आवन दैहों श्रीदामा सौं काम
दौरि-दौरि बालक सब आवत छुवत महरि कौ गात।
सब आए रहे सुबल श्रीदामा हारे अब कैं तात।
सोर पारि हरि सुबलहिं धाए गहयौ श्रीदामा जाइ।
दै दै सौंह नंदबाबा की, जननी पै लै आइ।
हँसि-हँसि तारी देत सखा सब भए श्रीदामा चोर।
सूरदास हँसि कहतिं जसोदा जीत्यौ है सुत मोर।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उचित ही लिखा है-

यशोदा के बहाने सूर ने मातृ हृदय का ऐसा स्वाभाविक, सरल और हृदयग्राही चित्र खींचा है कि आश्चर्य होता है।

कृष्ण बड़े हो गये हैं बाहर सखाओं के साथ खेलना ही शुरू नहीं कर दिया वरन् श्रीकृष्ण के मन में गाय दुहने की उत्सुकता भी पैदा हो गयी है। इसीलिये ग्वालिनी के संग बैठकर गाय का दुहना देखते हैं और कहते हैं–

धेनु दुहत हरि देखत ग्वालिनी।
आपुन बैठ गए तिनके संग सिखवहु मोहि कहत गोपालनि।

और फिर एक दिन गाय चराने को मचलने लगते हैं–

मैया हौं गाय चरावन जैहौं।
तू कहत महरि नन्दाबाबा सौं बड़ो भयो न डरैहौं।

सूरदास रचित काव्य में राधा और कृष्ण के बीच प्रेम का विकास शनैः शनैः स्वाभाविक ढ़ंग से हुआ है, जो शैशवोचित चपलता से प्रारम्भ होता है और धीरे–धीरे अनुराग बढ़ता जाता है–

श्याम का राधा से पूछना–

बूझत श्याम, कौन तू गौरी।
कहाँ रहत, काकी तू बेटी, देखी नाहिं कहूँ ब्रज खोरी।

और राधा का उत्तर देना–

काहे को हम ब्रज तन आवति, खेलत रहत आपनि पौरी।
सुनति रहति श्रवनन नंद ढोता करत रहत माखन दधि चोरी।

बालसुलभ वार्तालाप का ही उदाहरण है।

ऐसे ही प्रस्तुत उदाहरण में आपसी नोंक–झोंक का वर्णन कवि ने किया है–

श्रीकृष्ण का गाय दुहना–

धेनु दुहत अति ही रति बाढ़ी।
एक धार दोहनि पहुँचावत, एक धार जहँ प्यारी ठाढ़ी।

और इस पर राधा का उत्तर–

तुम पै कौन दुहावै गैया।
इत चितवत उत धार चलावत, एहि सिखयो है मैया।

जिस रागात्मकता के साथ सूरदासजी ने श्रीकृष्ण के बाल–जीवन की विविध लीलाओं को अभिव्यक्त किया है उसी प्रकार श्रीकृष्ण और बलराम के

मथुरा गमन पर वात्सल्य- वियोग का वर्णन भी किया है। सूरदास द्वारा वर्णित प्रवासजन्य विरह का चित्रण उभयपक्षीय है। कृष्ण के मथुरा गमन से नन्द-यशोदा, गोप-गोपियाँ, राधारानी ही दुःखी नहीं है, वरन् कृष्ण भी मथुरा में अनन्त वैभव-विलास में रहते हुये भी माता यशोदा व ब्रज-वासियों को नहीं भुला पाते। श्रीकृष्ण तभी तो नन्द के हृदय को कठोर बताते हुये कहते हैं-

कहियो नन्द कठोर भये।

हम दोउ वीरैं डारि परघरैं मानों थाति सौंपि गए।

ऐसे ही माता यशोदा की याद करते हुये श्रीकृष्ण कहते हैं-

जा दिन ते हम तुम तें बिछुरे काहु न कह्यौ कन्हैया।

कबहुँ प्रात न कियो कलेवा साँझ न पीनी छैया।

कान्हा की याद में माता यशोदा का हृदय भी व्यथित हो रहा है-

जद्यपि मन समुझावत लोग।

शूल होत नवनीत देखिकै मोहन के मुख जोग।

और माता यशोदा पथिकों के हाथ संदेश भेजती हैं-

संदेशो देवकी सौ कह्यो।

हौं तो धाय तिहारे सुत की कृपा करत ही रहियौ।

वास्तव में सूरदासजी ने श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओं और मातृभावना को लेकर जिस रागात्मकता के साथ वात्सल्य रस की धारा प्रवाहित की है, उससे वात्सल्य भाव को रसों में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है। सूर की दृष्टि में बालकृष्ण में भी परमब्रह्म अवतरित रहे हैं, उनकी बाल-लीलाओं में भी ब्रह्मतत्त्व विद्यामान है, जो विशुद्ध बाल-वर्णन की अपेक्षा, कृष्ण के अवतारी रूप का परिचायक है। तभी तो, कृष्ण द्वारा पैर का अंगूठा चूसने पर तीनों लोकों में खलबली मच जाती है -

कर पग गहि अंगूठा मुख मेलत

प्रभु पौढे पालने अकेले हरषि-हरषि अपने संग खेलत

शिव सोचत, विधि बुद्धि विचारत बट बाढयो सागर जल खेलत

बिडरी चले घन प्रलय जानि कैं दिगपति, दिगदंती मन सकेलत

मुनि मन मीत भये भव-कपित, शेष सकुचि सहसौ फन खेलत

उन ब्रजबासिन बात निजानी। समझे सूर संकट पंगु मेलत।

दही बिलौने की हठ को देख कर वासुकी और शिव भयभीत हो जाते हैं-

मथत दधि, मथनि टेकि खरयों
आरि करत मटुकि गहि मोहन
बासुकी,संभु उरयो।

कृष्ण विष्णु के अवतार हैं अतः वे बाल रूप में भी असुरों का सहज ही वध करते वर्णित किये गए हैं। कंस द्वारा भेजी गई पूतना के कपट को वे अपने नवजात रूप में ही भाप उसके विषयुक्त स्तन पान करते-करते उसके प्राण हर लेते हैं।

कपट करि ब्रजहिं पूतना आई
अति सुरूप विष अस्तन लाए, राजा कंस पठाई
कर गहि छरि पियावति, अपनी जानत केसवराई
बाहर व्है के असुर पुकारी, अब बलि लेत छुहाई
गई मुरछाह परी धरनी पर, मनौ भुवंगम खाई।

सूर के वात्सल्य वर्णन में यद्यपि उनके विष्णु अवतार होने की झलके तो अवश्य मिलती है, तथापि ये वर्णन किसी भी माँ के अपने पुत्र के प्रति वात्सल्य का प्रतिनिधित्व करते हैं - यशोदा जी श्री कृष्ण को पालने में झुला रही हैं और उनको हिला-हिला कर दुलराती हुई कुछ गुनगुनाती भी जा रही हैं, जिससे कि कृष्ण सो जाएं।

जसोदा हरि पालने झुलावै
हलरावे, दुलराई मल्हावे, जोई-सोई कछु गावै
मेरे लाल को आउ निंदरिया, काहै न आनि सुवावै
तू काहैं नहिं बेगहीं आवै, तोको कान्ह बुलावैं।

माँ की लोरी सुन कर कृष्ण अपनी कभी पलक बन्द कर लेते हैं, कभी होंठ फड़काते हैं। उन्हें सोता जान यशोदा भी गुनगुनाना बंद कर देती हैं और नन्द जी को इशारे से बताती हैं कि कृष्ण सो गए हैं। इस अंतराल में कृष्ण अकुला कर फिर जाग पड़ते हैं, तो यशोदा फिर लोरी गाने लगती हैं।

कबहूँ पलक हरि मूँद लेत हैं, कबहूँ अधर फरकावै।
सोवत जानि मौन व्है रहि रहि, करि करि सैन बतावे।
इहिं अंतर अकुलाई उठे हरि, जसुमति मधुर गावैं।

प्रस्तुत पद में सूर ने अपने अबोध शिशु को सुलाती माता का बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया है।

माँ के मन की लालसा व स्वप्नों को भी सूर ने बड़े जीवंत ढंग से अपने पदो में उतारा है। जैसे –

जसुमति मन अभिलाष करै।
कब मेरो लाल घुटुरुवनि रैंगे, कब धरनी पग द्वेक धरै।
कब द्वै दाँत दूध कै देखौं, कब तोतें मुख बचन झरैं।
कब नन्दहिं बाबा कहि बोले, कब जननी कहिं मोहिं ररै।
सुत मुख देखि जसोदा फूली
हरषति देखि दूध की दँतिया, प्रेम मगन तन की सुधि भूली।
बाहर तैं तब नन्द बुलाए, देखौ धौं सुन्दर सुखदाई।
तनक-तनक सी दूध दंतुलिया, देखौ, नैन सफल करो आई।

श्री कृष्ण के दाँत निकलने पर यशोदा माता की खुशी का पारावार नहीं रहता, वे नन्द को बुला कर उनके दूध के दाँत देख कर अपने नेत्र सफल करने के लिये कहती हैं।

हरि किलकत जसुमति की कनियाँ।
मुख में तीनि लोक दिखाए, चकित भई नन्द-रनियाँ।
घर-घर हाथ दिखावति डोलति, बाँधति गरै बघनियाँ।
सूर स्याम को अद्‌भुत लीला नहिं जानत मुनि जनियाँ।

माँ को अपने लाडले पर बड़ा नाज है सो बड़ी चिन्तित रहती है कि उसे किसी की नजर ना लग जाए। यही कारण है कि जब एक दिन माँ की गोद में अलसाते कान्हा ने जोर की जमुहाई लेकर अपने मुख में तीनों लोकों के दर्शन करवा दिये तो माँ डर गई और उनका हाथ ज्योतिषियों को दिखाया और बघनखे का तावीज गले में डाल दिया।

सोभित कर नवनीत लिये।
घुटुरुनि चलत रेनु तन-मण्डित, मुख दधि लेप किये।
कंठुला कंठ, ब्रज केहरि-नख, राजत रुधिर हिए।
धन्य सूर एकौ पल इहिं सुख, का सत कल्प जिए।

कृष्ण घुटनों के बल चलने लगे हैं, उनके हाथों में मक्खन है, मुँह पे दही लगा है, शरीर मिट्टी से सना है। मस्तक पर गोरोचन का तिलक है और उनके घुंघराले बाल गालों पर बिखरे हैं। गले में बघनखे का कंठुला शोभायमान है। कृष्ण के इस सौंदर्य को एक क्षण के लिये देखने भर का सुख भी सात युगों तक जीने के समान है।

किलकत कान्ह घुटुरुवनि आवत।
मनिमय कनक नन्द कैं आँगन, बिंब पकरिबै धावत।
कबहुँ निरखि हरि आपु छाँह कौं, कर सौं पकरन चाहत
किलकि हांसत राजत द्वै दतियाँ, पुनि-पुनि तिहिं अवगाहत।
बाल-दसा सुख निरखि जसोदा, पुनि-पुनि नन्द बुलावत।
अंचरा तर लै ढाँकि, सूर के प्रभु कौ दूध पियावत।

नन्द जी का आँगन रत्नजटित स्वर्ण निर्मित है। इसमें जब कान्हा घुटनों के बल चलते हैं तो उसमें अपनी परछांई उन्हें दिखती है, जिसे वे पकडने की चेष्टा करते घूमते हैं। ऐसा करते हुए जब वे किलकारी मार कर हँसते हैं तो उनके दूध के दाँत चमकने लगते हैं और इस स्वर्णिम दृश्य को दिखाने के लिये यशोदा माँ बार-बार नन्द बाबा को बुला लाती हैं।

चलत देखि जसुमति सुख पावै।
ठुमकि-ठुमकि पग धरनि रेंगत, जननी देखि दिखावै।
देहरि लौं चलि जात, बहुरि फिरि-फिरि इतहिं कौ आवै।
गिरि-गिरि परत, बनत नहिं लाँघत सुर-मुनि सोच करावै।

कृष्ण को गिरते-पडते, ठुमुक-ठुमुक चलते देख यशोदा माँ को अपार सुख मिलता है।

धीरे-धीरे कृष्ण बड़े होते हैं। माँ कोई भी काम करती है तो छोटे बच्चे भी उस काम को करने की चेष्टा करते हैं और माँ के काम में व्यवधान डालते हैं। माँ को दूध बिलोते देख कृष्ण मथानी पकड़ लेते हैं। यशोदा उनकी मनुहार करते हुए कहती है–

नन्द जू के बारे कान्ह, छाँडि दे मथनियाँ।
बार-बार कहति मातु जसुमति नन्द रनियाँ।
नैकु रहौ माखन देऊँ मेरे प्रान-धनियाँ।
अरि जनि करौं, बलि-बलि जाउं हो निधनियाँ।

श्री कृष्ण अन्य बच्चों के समान ही माँ से मक्खन रोटी माँगते हुए आँगन में लोट-लोट जाते हैं। यशोदा समझाती हैं –

गोपालराई दधि मांगत अरु रोटी।
माखन सहित देहि मेरी मैया, सुकोमल मोटी।
कत हौ मारी करत हो मेरे मोहन, तुम आंगन में लोटी।

जो चाहौ सौ लेहु तुरतही छाडौ यह मति खोटी।
करि मनुहारि कलेऊ दीन्हौं, मुख चुपरयौ अरु चोटी।
सूरदास कौ ठाकुर ठठौ, हाथ लकुटिया छोटी।

कृष्ण चाहते हैं कि जल्दी ही उनकी चोटी बलराम भैया जितनी लम्बी और मोटी हो जाए। माँ यशोदा को उन्हें दूध पिलाने का अच्छा अवसर मिल जाता है और वे कहती हैं यदि तुम दूध पी लोगे तो तुम्हारी चोटी बलराम जितनी लम्बी और मोटी हो जाएगी। बालकृष्ण दो तीन बार तो माँ की बातों में आ जाते हैं फिर माँ से झगडते हैं कि तू मुझे बहाने बना कर दूध पिलाती रही देख मेरी चोटी तो वैसी है, चोटी दूध से नहीं माखन-रोटी से बढती है।

मैया कबहिं बढैगी चोटी।
किती बार मोहि दूध पियत भई, यह अजहूँ छोटी।

प्राय: बच्चों के द्वारा यह पूछने पर कि मैं कहाँ से आया हूँ, उन्हें यह उत्तर दिया जाता है कि तुम्हें किसी कुंजडिन या नटनी से खरीदा गया है या मोल लिया है। यहाँ बलराम बड़े हैं और वे कृष्ण को ये कहके चिढ़ाते रहते हैं कि तुम माता यशोदा के पुत्र नहीं तुम्हें मोल लिया गया है। अपने कथन को सिद्ध करने के लिये वे तर्क भी देते हैं कि बाबा नंद भी गोरे हैं, माता यशोदा भी गोरी हैं तो तुम साँवले क्यों हो? अत: तुम माता यशोदा के पुत्र कैसे हो सकते हो? कृष्ण रूआँआसे होकर माँ से शिकायत करते हैं।

मैया मोहे दाऊ बहुत खिजायौ।
मोसौं कहत मोल को लीन्हो तोहि जसुमति कब जायौ।
कहा करौ इहि रिस के मारै, खेलन को नहिं जात।
पुनि-पुनि कहत है कौन है माता, कौ है तेरो तात।
गोरे नन्द जसोदा गोरी, तू कत स्याम शरीर।
चुटकी दै दै हँसत ग्वाल सब, सिखै देत रघुबीर।

फिर बाल सुलभ ईर्ष्या की बातें कह कर कि तू भी मुझको ही पीटती है, दाऊ पर जरा भी गुस्सा नहीं होती, कृष्ण माँ का मन रिझा लेते हैं–

तू मोहि को मारन सीखी, दाउहिं कबहूँ न खीजे।

इस पर माँ अपने बालकिशन को यह कह कर मनाती है –

मोहन मुख रिस की ये बातें, जसुमति सुनि-सुनि रीझै।
सुनहूँ कान्ह बलभद्र चबाई, जनमत ही कौ धूत।
सूर स्याम मोहिं गोधन की सौं, हौं माता तू पूत।

यहाँ प्रस्तुत चित्रण में पिता बच्चों के साथ भोजन करना चाहते हैं, किन्तु बच्चे खेलने की धुन में घर ही नहीं आते –

हार कौं टेरित हैं नन्दरानी।
बहुत अबार भई कँह खेलत रहे, मेरे सारंग पानी।
सुनतहिं टेरि, दौरि तँह आए, कबसे निकसे लाल।
जेंवत नहीं नन्द तुम्हरै बिन बेगि चल्यौ गोपाल।
स्यामहिं लाई महरि जसोदा, तुरतहिं पाइं पखारि।
सूरदास प्रभु संग नन्द कैं बैठे हैं दोउ बारै।

सूर वात्सल्य भाव और बालसुलभ बातों की अंतरंग तहों तक अपने पदों के द्वारा पहुँच गए हैं। सूर जैसे एक जन्मांध व्यक्ति के लिये यह सब दिव्यदृष्टि जैसा अनुभव रहा होगा।

यशोदा के वात्सल्य भाव का सूर ने उन पदों में बड़ा अच्छा चित्रण किया है, जिसमें कृष्ण ब्रज की गलियों में घर घर जाकर दही-माखन चुराते हैं, बर्तन फोड ड़ालते हैं और स्त्रियाँ आकर उनकी शिकायत करती हैं, किन्तु यशोदा उनकी बात अनसुनी कर देती हैं, और बालकृष्ण का ही पक्ष लेती हुई कहती हैं –

अब ये झूठहु बोलत लोग।
पाँच बरस और कछुक दिननि को, कब भयौ चोरी जोग।
इहिं मिस देखन आवति ग्वालिनी, मुँह फारे जु गँवारि।
अनदोषे कौ दोष लगावति, दहि देइगौ टारि।

अपने बच्चे का पक्ष लेते हुए यशोदा सोचती हैं, जब मेरा बच्चा इतना छोटा है तो उसका हाथ छींके तक कैसे पहुँच सकता है!

महाकवि सूर को बाल-प्रकृति तथा बालसुलभ चित्रणों की दृष्टि से विश्व में अद्वितीय माना गया है। उनके वात्सल्य वर्णन का कोई साम्य नहीं, वह अनूठा और बेजोड है। बालकों की प्रवृति और मनोविज्ञान का जितना सूक्ष्म व स्वाभाविक वर्णन सूरदास जी ने किया है वह हिन्दी के किसी अन्य कवि या अन्य भाषाओं के किसी कवि ने नहीं किया है। शैशव से लेकर

कौमार अवस्था तक के क्रम से लगे न जाने कितने चित्र सूर के काव्य में वर्णित हैं।

वैसे तो श्रीकृष्ण के बाल-चरित्र का वर्णन श्रीमद्भागवत गीता में भी हुआ है और सूर के दीक्षा गुरू वल्लभाचार्य श्रीकृष्ण के बालरूप के ही उपासक थे जबकि श्रीकृष्ण के गोपीनाथ वल्लभ किशोर रूप को स्वामी विठ्ठलनाथ के समय मान्यता मिली। अतः सूर के काव्य में कृष्ण के इन दोनों रूपों की विस्तृत अभिव्यंजना हुई।

माँ का भी मनोविज्ञान सूर से अछूता नहीं रहा। वह माँ जो स्वयं लाख डाँट ले पर दूसरों द्वारा की गई अपने बालक की शिकायत या डाँट वह सह नहीं सकती। यही हाल सूर की जसुमति मैया का है।

जब कृष्ण और बलराम को मथुरा बुलाया जाता है, तो उनके अनिष्ट की आशंका से उनका मन कातर हो उठता है। माता को पश्चाताप है कि जब कृष्ण ब्रज छोड मथुरा जा रहे थे तब ही उनका हृदय फट क्यों न गया।

छाँडि सनेह चले मथुरा कत दौरि न चीर गह्यो।
फटि गई न ब्रज की धरती, कत यह सूल सह्यो।

इस पर नन्द स्वयं व्यथित हो यशोदा पर अभियोग लगाते हैं कि तू बात-बात पर कान्हा की पिटाई कर देती थी सो रूठ कर वो मथुरा चला गया है–

तब तू मारि बोई करत।
रिसनि आगै कहै, जो धावत, अब लै भाँडे भरति
रोस कै कर दाँवरी लै फिरति घर-घर घरति।
कठिन हिय करि तब ज्यौं बंध्यौ, अब वृथा करि मरत।

एक ओर नन्द की ऐसी उपालम्भ पूर्ण उक्तियाँ हैं तो दूसरी ओर यशोदा भी पुत्र की वियोगजन्य झुंझलाहट से खीज कर नन्द से कहती है।

नन्द ब्रज लीजै ठोकि बजाय।
देहु बिदा मिलि जाहिं मधुपुरी जँह गोकुल के राय।

अब यशोदा पुत्र प्रेम के अधीन देवकी को संदेश भिजवाती हैं कि ठीक है कृष्ण राजभवन में रह रहे हैं, उन्हें किसी बात की कमी नहीं होगी पर कृष्ण को तो सुबह उठ कर मक्खन-रोटी खाने की आदत है। वे तेल, उबटन और गर्म पानी देख कर भाग जाते हैं। मैं तो कृष्ण की मात्र धाय ही हूँ पर चिंतित हूँ वहाँ मेरा पुत्र संकोच न करता हो।

संदेशो देवकी सौं कहियौ।
हौं तो धाय तिहारे सुत की कृपा करत ही रहियो।
उबटन तेल और तातो जल देखत ही भजि जाते।
जोई-जोई माँगत सोई-सोई देती करम-करम करि न्हाते।
तुम तो टेव जानतिहि व्है हो, तऊ मौहि कहि आवै।
प्रात उठत मेरे लाल लडैतेंहि माखन रोटी खावै।

यह कहना अतिशयोक्ति नहीं कि बाल मनोविज्ञान उसके हाव-भाव और क्रीडाओं के चित्रण तथा जननी-जनक के वात्सल्य भाव की व्यंजना के क्षेत्र में सूर हिन्दी साहित्य ही नहीं अपितु विश्व साहित्य के एक बेजोड़ कवि हैं।

❒❒❒